CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व

सम्पादक

प्रो० राधेश्यामधर द्विवेदी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

12.9

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व

लेखक एवं संपादक
प्रो० राधेश्यामधर द्विवेदी

प्रकाशक
प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय बौद्ध स्वाध्याय समिति
एस. १९/१३४ डी-३ए वरुणा परिसर, ताज होटल के पीछे नदेसर
वाराणसी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक :
प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय बौद्ध स्वाध्याय समिति
एस. १९/१३४ डी-३ ए, वरुणा परिसर (ताज होटल के पीछे)
नदेसर, वाराणसी

प्रथम संस्करण : १५ अक्टूबर, २००१ ई.

मूल्य : १००/- (एक सौ रुपया मात्र)

मुद्रक :
प्रभा प्रेस
चौकाघाट वाराणसी-२
दूरभाष : ०५४२-२१३७२६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तावना

'प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय बौद्ध स्वाध्याय समिति' प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी की पुण्य स्मृति में "उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व" शीर्षक ग्रन्थ का प्रकाशन करने जा रही है। उनके प्रिय शिष्य प्रो० राधेश्यामधर द्विवेदी के उत्साह से यह कार्य संपन्न हो रहा है। उन्हीं की प्रेरणा से प्रस्तुत पुस्तक की प्रस्तावना लिखने में मैं प्रवृत्त हुआ हूँ।

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी कल्याणमित्र शब्द का पूरी तरह से प्रतिनिधित्व करते थे। सुहत्प्रवर के रूप में मैंने उनकी पहचान की थी और मैंने देखा कि अन्तिम समय तक उन्होंने इस सुहृद्धर्म का पूरी तत्परता से निर्वाह किया। सन् १९३९-४० में उनसे मेरा पहला परिचय वाराणसी के गढ़वासी टोला के एक सद्-गृहस्थ के घर में चलने वाली पाठशाला में हुआ था, जहाँ पोस्टाचार्य पं० श्री चन्द्रशेखर शास्त्री जी अपराह्न में वेदान्त का अध्यापन कराते थे। जब तक शास्त्री जी काशी में रहे, वे नियमित रूप से वेदान्त के अध्ययन के लिये उनके पास आते रहे। उनके गुजरात चले जाने पर ये पं० ढुण्ढिराज शास्त्री जी से अध्ययन करने लगे। व्याकरण मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के बाद मैंनें आगे के अध्ययन के लिये दर्शन विषय को चुना। दयानन्द महाविद्यालय के परिसर मे स्थित नित्यानन्द वेद विद्यालय में प्रातः काल और अपराह्न में शास्त्री जी के घर पर प्रायः प्रतिदिन अध्ययन के लिये हम लोग पहुंचते रहे। तब श्री उपाध्याय जी की प्रसिद्धि एक अति सम्पन्न शिक्षित परिवार के सदस्य की संस्कृतभाषा के अध्येता छात्र के रूप मे थी। जो उस समय की ही क्यों ? आज की भी परम्परा के विपरीत है। प्रायः निर्धन छात्र ही बाध्यतावशं संस्कृत पढ़ने में प्रवृत्त होते रहे हैं। उनके पिता श्री रघुनन्द उपाध्याय उस समय वाराणसी में मजिस्ट्रेट के पद को सुशोभित कर रहे थे। और ये अपने परिवार के साथ लहुराबीर स्थित मुंशी माधव लाल के कोठी मे रहते थे, सन् १९४३ के जुलाई मास के पहले तक श्री उपाध्याय जी का इससे अधिक परिचय नहीं हो पाया था, इनसे घनिष्ठता तब बढ़ी जब तत्कालीन राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के छात्रावास में हम लोग रहने लगे। श्री उपाध्याय जी के अतिरिक्त पं० श्री भागीरथी दुबे जी और पं० श्री कृष्णकांत पाण्डेय जी ने तब विभिन्न विषयों की आचार्य परीक्षा में प्रवेश लिया था, इनकी पारिवारिक स्थिति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से ही नहीं, इनके गुणों से भी आकृष्ट होकर हम सबने इनको अपना नेता मान लिया था। उस छात्रावास में संस्कृत छात्रों की अपेक्षा क्वींस कालेज के छात्रों की संख्या तिगुनी रहते हुए भी इनके प्रभाव से मैं समाज मन्त्री के पद पर चुन लिया गया। उन दिनों की एक-दो घटनाओं की चर्चाकर देना आवश्यक है।

महाशिवरात्रि के शुभ अवसर पर छात्रावास के प्रायः सभी छात्र गंगास्नान के लिये गये हुए थे। इसी बीच एक संस्कृत छात्र का कुछ सामान गायब हो गया। बाद में उपाध्याय जी की तत्परता से वह सामान मिल गया और उसे उन्होंने उसके स्वामी तक पहुँचवा दिया। इसकी सूचना छात्रावास के प्रतिपालक महोदय के पास पहुँच गयी और श्री उपाध्याय जी के ऊपर दबाव पड़ा कि वे उस छात्र का नाम बतावें। अन्यथा उन्हीं को अपराधी माना जायेगा। श्री उपाध्याय जी ने ऐसा करने के बजाय एक लिखित पत्र के द्वारा अपने ही छात्रावास से हट जाने की इच्छा व्यक्त की। वह पत्र मुझे देकर वे अपने शुभचिंतक विरक्त स्वामी के यहाँ चले गये, इस पत्र की सूचना प्रतिपालक महोदय के पास पहुँच गयी। सायंकाल की हाज़िरी के समय उन्होंने ने उस पत्र की मुझसे माँग की। मैं यह उनको देना नहीं चाहता था, अतः मैंने बहाना बना दिया कि उन्होंने मुझे वह पत्र दिया अवश्य था, किन्तु बाद में वे उसे वापस ले गये। हम दोनों ही उनके कोप के भाजन बन गये।

इस घटना के बाद पहले मैं विरक्त स्वामी जी के यहाँ गया। श्री उपाध्याय जी को इतना दुःखी उसके बाद पूरे जीवन में मैंने कभी नहीं देखा। विरक्त स्वामी जी के कहने पर मैं उसी समय डॉ० मगंलदेव शास्त्री जी के घर पर चला गया, जो उन दिनों राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के प्रिंसिपल थे। डॉ० शास्त्री जी राजकीय सेवा में रहते हुए भी श्री उपाध्याय जी के जैसे स्वतन्त्रता-संग्राम में संलिप्त संस्कृत छात्रों के संरक्षक थे। श्री उपाध्याय जी के लिखे पत्र को उन्होंने अपने पास रख लिया और बीच में पड़कर इस दुःस्थिति को दूर कर दिया।

श्री उपाध्याय जी का काशी विद्यापीठ के छात्रों और अध्यापकों से भी अच्छा सम्पर्क था। उन्होंने काशी विद्यापीठ, क्वींस कालेज और संस्कृत महाविद्यालय के छात्रों के सहयोग से एक पत्रिका निकाली। सम्पादक मण्डल में उन्होंने मेरा नाम दिया, अपना नहीं। इतना ही नहीं, इस पत्रिका के लिए उन्होंने बिना नाम के एक धीर-गम्भीर निबन्ध भी लिखा। इस तरह का निबन्ध लिखने का तब मुझमें सामर्थ्य नहीं था। तो भी संबद्ध व्यक्ति ने यह लेख मेरा ही लिखा हुआ है, यह मानकर मुझे बधाई देने पहुँचे। उन सभी को मैंने बताया कि यह लेख श्री उपाध्याय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जी का लिखा हुआ है, मेरा नहीं। उनकी यह प्रसिद्धि-निरपेक्षता वेदांत के अध्ययन के कारण हो सकती है।

प्रोफेसर हो जाने के बाद भी श्री उपाध्याय जी की आर्थिक स्थिति बीस तारीख के बाद डाँवाडोल हो जाती थी और इसका कारण अपव्यय नहीं, उनकी उदारता थी। वे अपने पास आने वाले प्रत्येक अभावग्रस्त की सभी तरह की सहायता किया करते थे और जिसकी सहायता करते थे, उसके सिवाय दूसरा उसको जान भी नहीं पाता था। मैंने भी एक दुःस्थिति के आने पर लगभग तीन वर्ष तक यात्रा-व्यय के रूप में इस तरह की सहायता प्राप्त की है। इस तरह के पुण्यानुस्मरण से भला किसको तृप्ति मिल सकती है— श्रेयांसि केन तृप्यते ? अस्तु।

प्रस्तुत ग्रंथ में प्रो० उपाध्याय जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। ये स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रखर सेनानी रहे हैं। प्रो० सत्य प्रकाश मित्तल के निबन्ध से इनके इस संघट्ट का अच्छा परिचय मिलता है और डॉ० बनारसी लाल ने उनके सानिध्य में रहते हुए उनके पुस्तकालय को सुव्यवस्थित करने के साथ उनके संस्कृत, हिन्दी, और अंग्रेजी भाषा के निबन्धों को एक स्वरूप प्रदान कर दिया था। उस लेख को भी मूल रूप में यहाँ प्रकाशित कर दिया गया है। यह दुःख का विषय है कि उनके ये निबन्ध अभी तक पुस्तक का आकार न ग्रहण कर सके। सम्बन्द्ध व्यक्तियों से हमारा निवेदन है कि सभी प्रकार की उपस्थित विघ्न-बाधाओं को दूर कर वे इस संकलन को प्रकाशित कराने में तत्पर हों। इस संकलन के प्रकाशित हो जाने पर हमें पता चल सकेगा कि श्री उपाध्याय जी की सारस्वत यात्रा किन-किन संघट्टों को पार कर निरन्तर आगे बढ़ती रही है।

प्रो० उपाध्याय जी विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों से जुड़े हुए थे। इनमें सर्वाधिक लगाव उनका ग्रामीण संस्कृति से था। पेड़ की झुकी हुई शाखाओं को देखकर उनका ग्रामीण परिवेश जाग उठता था। थोड़ी देर के लिए ठहर कर वे हरिणी की कथा-व्यथा को सुनाने लगते थे, जो अपने पति की आतों से बने तन्तुवाद्य की ध्वनि को सुनकर अपनी सुध-बुध खो बैठती है। 'गाँव और परम्परा का महत्व' शीर्षक निबन्ध में उनकी इस प्रवृत्ति को गहराई से देखा जा सकता है।

समाज और व्यक्ति की परस्पर गहरी सापेक्षता का निरूपण उन्होनें विभिन्न भारतीय दर्शनों की पृष्ठभूमि में किया है। इस क्षेत्र में उन पर म.म. पद्मविभूषण पं० गोपीनाथ कविराज जी का और आचार्य नरेन्द्रदेव जी का समान प्रभाव रहा है। वैदिक दर्शनों के साथ बौद्ध और जैन दर्शन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की तरफ एवं श्रमण संस्कृति के साथ पालि एवं प्राकृत भाषाओं की तरफ भी उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के माध्यम से उनको उन्होंने जीवन्त स्वरूप दिया। यह उनका चिरस्मरणीय अवदान रहेगा। हमें यह याद रखना है कि बुद्ध और महावीर इसी धरती की उपज हैं और संस्कृत भाषा के साथ पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का साहित्य भी यहीं रचा गया है।

दर्शन ही नहीं, विभिन्न भारतीय धर्मों के प्रति भी इनका समान आदरभाव था, इसको हम वैदिक, बौद्ध, जैन और सिक्ख धर्म के संस्कारों के प्रति प्रस्तुत किये गये इनके विचारों में देख सकते हैं। सांस्कृतिक एकता के लिए निकाली गयी इनकी मैत्री यात्रा भी चिर-स्मरणीय रहेगी। इन सबका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया गया है।

पाठकों को प्रो० उपाध्याय जी के चितंन की गहराई तक पहुचनें के लिए विभिन्न गोष्ठियों के संयोजक के रूप में दिये गये इनके वक्तव्यों को तथा प्रस्तुत पुस्तक के संगृहीत 'सांस्कृतिक समन्वय' एवं 'समतावादी चिन्तन' जैसे प्रकरणों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

प्रो० उपाध्याय जी के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी उनके सम्मान में प्रकाशित हुए हैं। इनका भी अपना महत्व है, किन्तु हमारी समझ में उनके अपने निबन्धों का संग्रह जब तक प्रकाशित नहीं होगा, तब तक हम उनके वैचारिक समग्र स्वरूप से परिचित नहीं हो सकेंगे।

अन्त में हम प्रो० उपाध्याय जी के उदार सांस्कृतिक स्वरूप के निदर्शक इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए 'प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय बौद्ध स्वाध्याय समिति' के सभी पदाधिकारियों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं, विशेषकर पद्मश्री रवीन्द्र शाई एवं प्रो० राधेश्यामधर द्विवेदी जी का, जिनके अथक परिश्रम से इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है।

दिनांक :- २ अक्टूबर, २००१

प्रो० ब्रजबल्लभ द्विवेदी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशकीय वक्तव्य

'प्रो० ज न्नाथ उपाध्याय बौद्ध स्वाध्याय समिति' के परिचय एवं सहायता के प्रसंग में एक सरकारी अधिकारी ने कहा- यह कौन जगन्नाथ उपाध्याय हैं ? उनका क्या योगदान है ? इस सम्बन्ध में विवरण अपेक्षित है ताकि लोग उनके योगदान को समझकर मूल्यांकन कर सकें। इसमें दो राय नहीं कि प्रो० उपाध्याय के निधन के बाद उनके विचारों का आँकलन नहीं हो सका, जो कि अत्यन्त आवश्यक था पर प्रो० उपाध्याय जी के सांस्कृतिक व्यक्तित्व को लिखना एक कठिन कार्य था और तदर्थ समय चाहिए था, पर मैं थका हारा अपने वैचारिक पृष्ठभूमि पर उनके जीवन विचार, व्यवहार पर लिखने बैठ गया। करीब ८० पृष्ठ लिखा था कि मेरे मित्र श्री मृत्युञ्जय त्रिपाठी ने कहा- मुझको यह किताब दे दीजिए। मैं इसे अपने प्रेस में छापूँगा। मैने कहा-पैसा नहीं है, और जल्दी छापना है। उन्होंने कहा फक्कड़ आदमी का काम मैं करूंगा। यद्यपि वह उ०प्र० के ब्राह्मण परिवारो में सबसे बड़े घर के हैं।

जल्दी में काम जब किया जाता है तो वह बहुत सुविचारित नहीं होता है और डर भी लगता है कि कहीं जिस व्यक्तित्व पर लिखा जा रहा है उसके जीवनोद्देश्य तथा विचारों के साथ न्याय हो रहा है या नहीं। इसकी क्रम में प्रो० उपाध्याय का आकलन किया गया है। यद्यपि प्रो० उपाध्याय के साथ प्रकाशक का गत ३० वर्षों का सम्बन्ध रहा है। इसलिए मैनें उनके 'उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व' पर ज्यादा जोर दिया और इस पुस्तक का नाम भी यही रखा गया है। इसमें प्रो० उपाध्याय के दार्शनिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन का विचार अधिक है और वह भी राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य से प्रारम्भ वेदान्तवादी प्रत्ययवाद, गांधीवाद, सर्वोदयवाद तथा बौद्धवादी दृष्टि से ओत-प्रोत है। इसमें गाँव के प्रति जो सहज लगाव है, पारम्परिक संस्कारों के प्रति दृष्टि है, इसी के कारण समग्र भारतीय संस्कृति के संस्कारों का विवरण है। मुझसे कई लोग वैदिक संस्कारों की भाँति बौद्ध संस्कारों के ज्ञान की पुस्तक चाहते थे। प्रो० उपाध्याय ने उनकी संरचना की थी। अतएव वह भी यहाँ है। समग्रता की दृष्टि से जैन तथा सिक्ख संस्कारों की दृष्टियाँ भी विवृत हैं, साथ ही उनके सांस्कृतिक जीवन दर्शन भी। छांदस भाषा से प्रारम्भ होकर संस्कृत, पालि, प्राकृत के आधार पर जन संस्कृति का प्रश्न भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

खड़ा किया गया है। भारत में समीक्षात्मक दृष्टि से वैदिक, बौद्ध, जैन तथा सिक्खों का स्वरूप जहाँ-तहाँ रखा गया है पर सब मिलाकर प्रो० उपाध्याय की बौद्ध दृष्टि सर्वत्र हाबी है। क्योंकि उसमें मानव की करुणा का भाव है, उसमें बोधिसत्त्व वृत्ति के कारण सामाजिक समता का उद्रेक है, उसमें जाति विखण्डन के कारण किसी के कार्यों का महत्व आंकने की दृष्टि है। यह सब आज के भारत की समस्याओं का समाधान है। इसलिए इसको व्यक्ति-चरित्र कैसे कहें ? इसमें प्रो० उपाध्याय के दो क्रान्तिकारी मित्रों का उनके दृष्टिकोण का उल्लेख है। इसमें एक उनके शिष्य का उनके प्रति भावांकन है। ऐसे में उनकी जीवनचर्या जीवनवृत्त न होकर सांस्कृतिक चर्या बन गयी है।

संस्कृति का व्यापक आयाम कैसे खड़ा होता है ? कैसे वह विकसित होता है ? यह इस 'उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व' के अध्ययन के बाद पता लगेगा। जब मनीषी की लोकयात्रा लिखी जा रही थी तो म.म.पं. गोपीनाथ कविराज जी ने स्वयं उस दृष्टि की ओर संकेत प्रस्तुत करवाया था, जो एक नये प्रकार का जीवनवृत्त बना। पर 'उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व' के आकलन के प्रति मात्र आज के भारत की संकीर्ण सांस्कृतिक परिधि को तोड़ने का आयाम ध्यान में रखा गया है और वह भी कथ्य व्यक्तित्व के अभाव में। इसलिए इसको प्रस्तुत करने में खामियाँ हो सकती है। वह हमारी है, और संस्कृति का व्यापक आयाम जो बौद्ध विचारों के क्रम से खड़ा करने का प्रयत्न किया गया है, यह वर्तमान की समस्याओं का निदान है। प्रो० उपाध्याय इससे भी बड़े थे सम्भवतः यदि वह होते तो इसको प्रकाशित नहीं होने देते। पर मेरा मन उनसे हठ करके समग्र भारतीय लोगों की तादात्म्य दृष्टि के लिए सबसे क्षमा पूर्वक जैसा समझा वैसा प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसमें पाठकगण का संबल हमको संतोष प्रदान करेगा तथा आगे भी कुछ करने का उत्साह देगा। मैं सभी ज्ञात-अज्ञात मित्रों तथा सहायकों के प्रति आभारी हूँ। प्रो० श्री ब्रजबल्लभ द्विवेदी श्री उपाध्याय जी के मित्र हैं उनके सभी वचन मेरे लिए भीष्मपितामह के वचन जैसे है। उन्होंने एक दिन में सब किया। डॉ० मृत्युञ्जय जी ने २० दिन में सब प्रस्तुत करवाया, डॉ० अरविन्द सिंह ने सिक्ख संस्कारों में सहायता प्रदान की। अत एव इन दोनों का मैं आभारी हूँ।

राधेश्यामधर द्विवेदी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व

विषय-सूची

		पृष्ठ संख्या
१.	जीवन परिचय	१-३
२.	प्रो० उपाध्याय का बहुआयामी व्यक्तित्व	४-१२
३.	प्रो० उपाध्याय की दार्शनिक सोच	१३-१७
४.	लोकदर्शन तक पहुँचने के सोपान	१८-२९
५.	प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय और सांस्कृति चिन्तन	३०-३३
६.	हिमालय संस्कृति सर्वेक्षण	३४-४४
७.	सांस्कृतिक संकट के बीच पालि प्राकृत भाषाओं की समस्या	४५-५५
८.	समतावादी चिन्तन	५६-६५
९.	समाज एवं व्यक्ति तथा भारतीय दर्शन	६६-८२
१०.	गाँव एवं परम्परा का ममत्व	८३-८६
११.	भारतीय संस्कार - (वैदिक संस्कार, बौद्ध संस्कार, जैन संस्कार, सिक्ख संस्कार)	८७-१३१
१२.	प्रो० उपाध्याय देश भक्त और क्रांतिकारी	१३२-१३९
१३.	बच्चों की दृष्टि से प्रो० उपाध्याय	१४०-१४१
१४.	बोधिसत्वका श्रावकायानी व्यक्तित्व कैसा था ?	१४२-१४३
१५.	प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय की साहित्यिक साधना	१४४-१५०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन परिचय

स्वर्गीय प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय का जन्म १५ अक्टूबर १९२१ में सरयाँ, कोरन्टाडीह (उजियार घाट) बलिया में पं० रघुनन्दन उपाध्याय के घर में हुआ था। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्हें घर पर प्राप्त हुई। बाल्यकाल में ही उनका विवाह श्रीमती ठाकुरदासी के साथ सम्पन्न हो गया। उनकी पत्नी अत्यन्त विनीत तथा सेवा परायण थीं जिसके कारण प्रो० उपाध्याय को अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का सुयोग प्राप्त हुआ। तदनन्तर कुछ वर्षों तक उनकी शिक्षा संस्कृत जुबली कालेज बलिया में श्री राम उदित उपाध्याय के सान्निध्य में हुई। उसके बाद वे परम्परागत शिक्षा ग्रहण करने हेतु वाराणसी चले आए। उन्होंने काशी में पं० रामबालक शास्त्री जी से लघुसिद्धान्त कौमुदी की शिक्षा प्राप्त की। उनका मन उस जमाने के स्वतन्त्रता-आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुआ। और उन्होंने परम्परागत अध्ययन के साथ-साथ स्वतन्त्रता की लड़ाई में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। १९४२ में अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में आवाज उठाने के कारण उन्हें 'संस्कृत कालेज' वाराणसी से निष्कासित किया गया, और उनको प्राप्त होने वाली "राधा बीवी" छात्रवृत्ति बन्द कर दी गई। उनके इस स्वातन्त्र्य योद्धा की प्रवृत्तिं का उल्लेख आदरणीय यशपाल जी ने अपनी पुस्तक 'तेरी मेरी उनकी बात' में पृष्ठ ६४७ से ५५० तक में किया है। स्वतन्त्रता की लड़ाई के दरम्यान उनका सम्बन्ध विभिन्न नेताओं के साथ हुआ। इनमें से आचार्य नरेन्द्रदेव, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, बाबू सम्पूर्णानन्द तथा डॉ० राममनोहर लोहिया प्रमुख थे। वे समाजवादी प्रवृत्ति के चिन्तक रहे। उनके साथियों में सर्वश्री राजनारायण, प्रभुनारायण तथा बलदाऊ पाण्डेय आदि प्रमुख हैं। उन्हें परम्परागत संस्कृत शिक्षा के साथ-साथ स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने की तथा काम करने जो दृष्टि मिली, उसके आधार पर उन्होंने अपने साथियों का भी समाज को ध्यान में रखकर चयन किया। व्याकरण से मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त शास्त्री और आचार्य की कक्षाओं में उन्होंनें वेदान्त को अपने अध्ययन का विषय बनाया। वेदान्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ने तत्कालीन सामाजिक चिन्तन को बहुत प्रभावित किया था। फलत: वे भी वेदान्त के अध्ययन में लग गए। किन्तु समाजवादी विचारकों की संगति के कारण वेदान्त के चिन्तन और आचरणगत भेद से उनका मन वेदान्त से भी उखड़ गया। अत: वे भारतीय संस्कृति की उस विधा को समझने की ओर प्रवृत्त हुए, जिसमें समग्र मानव जाति के लिए एक प्रकार की व्यवस्था थी। इस प्रवृत्ति में उनके सहायक गुरुओं में प्रमुख पद्मश्री पं० रघुनाथ शर्मा, आचार्य नरेन्द्रदेव, महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन तथा डॉ० टी० आर० वी० मूर्ति एवं डॉ० डी० एन० शास्त्री आदि थे। प्रो० उपाध्याय सरस्वती भवन से प्रकाशित होने वाली शोध-पत्रिका सारस्वती सुषमा के सहायक सम्पादक थे। आप राजकीय संस्कृत कालेज, बनारस में वेदान्त के अध्यापक के रूप में कार्य करते रहे, किन्तु संस्कृत कालेज के विश्वविद्यालय के रूप में परिवर्तित होते ही उन्होंने १९५८ में बौद्ध दर्शन के प्राध्यापक पद को स्वीकार किया। और तबसे उनका अध्ययन-अध्यापन का क्षेत्र बौद्ध दर्शन, पालि एवं श्रमण विद्यायें बन गयीं। उन्होंने सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय में बौद्धदर्शन से सम्बधित विभिन्न विभागानुभागों का सृजन कराया। वे संस्कृत विश्वविद्यालय में 'श्रमणविद्या संकाय' के संस्थापक थे। और १९६८ से ८२ तक पालि एवं थेरवाद विभाग के प्रोफेसर होने के साथ-साथ १९८० से १९८२ तक श्रमणविद्या संकाय में डीन भी थे। इस अवधि में उन्होंने विश्वविद्यालय में होने वाले परिसंवादों के प्रकाशन में "परिसंवाद" नामक पत्रिका का समारम्भ किया, तथा "श्रमण विद्या" नामक शोधपूर्ण संकाय पत्रिका को भी प्रारम्भ कर विश्वविद्यालय की श्रीवृद्धि की।

विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्हें 'कालचक्रतन्त्र' की विमलप्रभाटीका पर अनुसन्धान हेतु दो साल के लिए जवाहरलाल नेहरू फेलोशिप प्राप्त हुई। और इसी अवधि में उन्होंने अमेरिका, जापान, ताइवान, बर्मा, थाइलैण्ड, इटली, फ्रांस, जर्मनी एवं इंग्लैण्ड की यात्रायें की और विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं धर्म सभाओं में अपने भाषण दिए। वे श्रीलंका में भी बौद्ध धर्म पर व्याख्यान हेतु बुलाये गए थे। वहाँ उनको अनेकों उपाधियाँ प्राप्त हुईं। उनमें से प्रमुख हैं--- "तेपिटक भार इस्सराचरियो" (विद्योदय परिवेण विश्वविद्यालय, श्रीलंका) "सम्बुद्ध सासनक कित्तिसिरी" (उपोसथ पुप्फाराम महाविहार, कवक संघ, श्रीलंका), "तेपिटक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विसारद'' (अच्छेहगिरी महाविहार, कारक महासंघ, श्रीलंका)। कुछ दिनों तक वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पालि एव बौद्ध अध्ययन विभाग में अतिथि प्राध्यापक (विजिटिंग प्रोफेसर) थे। और तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी में नेपाल से प्राप्त बौद्ध पाण्डुलिपियों से सम्बन्धित शोध पत्रिका ''धी'' का प्रकाशन भी कर रहे थे। वे वहां पर पाण्डुलिपि एवं दुर्लभ ग्रन्थसंपादन योजना के निदेशक थे। उनके द्वारा सम्पादित कालचक्र तन्त्र के प्रथम खण्ड का प्रकाशन हो चुका है, जिसका विमोचन वर्ष १९८५ में परम पावन 'दलाई लामा' ने बोधगया में किया था। उन्होंने १५ सितम्बर १९८६ के अपने अन्तिम श्वास तक संस्कृत साप्ताहिक पत्र ''गाण्डीवम्'' का सम्पादन, प्रकाशन तथा मुद्रण कराया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रो० उपाध्याय का बहुआयामी व्यक्तित्व

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय का व्यक्तित्व बहुआयामी था। उन्होंने भारत की सांस्कृतिक विविधता तथा उसमें अनुस्यूत एकसूत्रता को समीप से पहचानने का प्रयास किया था। वह इस एकता की प्रतिष्ठा हेतु अनेक संस्थाओं, परिषदों, प्रदर्शनियों, सम्मेलनों, आन्दोलनों आदि का सफल संयोजन करते रहे। उन्होंने जहाँ एक ओर सर्वशक्तिमान् ईश्वर की सत्ता का खण्डन किया, वहीं दूसरी ओर सामन्ती सत्ता का भी विखण्डन किया। एक ओर वैदिक संस्कृति की सामन्ती प्रभुसत्ता को समाप्त करने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर श्रमणों की जनवादी परम्परा को कायम करने का भी प्रयास किया। सामान्यतः दार्शनिक क्षेत्र या संस्कृत के विद्वान सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं से अपने को दूर रखते हैं, पर उन्होंने पिछले चालीस वर्षों से भारतीय संस्कृति के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को उजागर करने के लिए और उसकी सामाजिक चेतना को उभारने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किया। उनकी भारतीय संस्कृति की उदारतावादी व्याख्या में समग्र भारतीय जनता को पूरे सम्मान का दर्जा प्राप्त है। उनके इस बहुआयामी व्यक्तित्व का एक संक्षिप्त स्वरूप निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है।

(क) बौद्ध अध्ययन के प्रति आकर्षण

१९५९ में परम पावन दलाई लामा जी के तिब्बत से आने पर सम्पूर्ण संसार में तहलका मचा। और चिन्ता प्रकट की जाने लगी कि सदियों से अध्यात्मवादी तिब्बती लोगों पर चीन के क्रूर आक्रमण के कारण उनकी परम्परा विच्छिन्न हो जाएगी। इस परम्परा को जारी रहना चाहिए। परम्परावादी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में उन्होंने बौद्ध अध्ययन के विकास की एक योजना प्रस्तुत की। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय विभाग में तिब्बती अध्ययन प्रारम्भ कर दिया गया। यह अध्ययन १९५९ में सर्वप्रथम मूर्त रूप ले सका।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रो० उपाध्याय ने संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति डॉ० आदित्यनाथ झा की प्रेरणा से सर्वप्रथम १९५९ में कलिंगपोंग तथा गंगटोक का सांस्कृतिक सर्वेक्षण का कार्य प्रारम्भ किया था। उनको सीमान्त की जीवन्त बौद्ध संस्कृति के विस्तार का पर्याप्त बोध था। अतएव उन्होंने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में अन्तर्राष्ट्रीय विभाग खोलने की योजना प्रस्तुत की। जिससे यहाँ के लोगों और सीमान्तों के जीवन और संस्कृति के अध्ययन के लिए अनेक संस्थान खोले गए, जिनमें से दिल्ली में लद्दाख उच्च शिक्षा संस्थान, लेह में केन्द्रीय बौद्ध संस्थान, हिमाचल प्रदेश में बौद्ध दर्शन संस्कृत महाविद्यालय, केलांग लाहुलस्पिती, सारनाथ में तिब्बती उच्च शिक्षा संस्थान तथा ञिङ्मा इन्स्टीट्यूट गंगटोक, सिक्किम एवं तवॉग गोम्पा, अरुणाचल प्रदेश आदि के विद्यालय प्रमुख हैं। उन्होंने हिमालय के पश्चिमोत्तर सीमान्त के सांस्कृतिक बोध एवं संरक्षण के लिए एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण भी कराने की योजना प्रस्तुत की थी। जिसमें २२ विद्वानों ने भाग लिया था। इनमें उनके सत्प्रयास से सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के १३ विद्वान् उपस्थित हुए थे। लद्दाख क्षेत्र की टीम का नेतृत्व स्वयं प्रो० उपाध्याय ने किया था।

२० दिसम्बर १९७८ को सरकारी अधिसूचना के अनुसार जिन संकायों का निर्माण सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में किया गया, उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करने की अहम् भूमिका प्रो० उपाध्याय ने अदा की थी। इन संकायों में 'श्रमण विद्याओं' से सम्बन्धित एक स्वतन्त्र संकाय की संरचना का श्रेय पूर्णतः प्रो० उपाध्याय को ही प्राप्त है। प्रो० उपाध्याय को पश्चिमोत्तर सीमान्त की संस्कृति का संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के साथ सम्बन्ध स्थापित करके वहाँ की भोट भाषा तथा उसमें निहित साहित्य का अपने मूलरूप संस्कृत के साथ जोड़ने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने प्राचीन भारत से विलुप्त हुए बौद्ध ग्रन्थों के पुनरुद्धार के लिए जहाँ एक ओर संस्कृत विश्वविद्यालय के अन्तर्राष्ट्रीय विभाग में तिब्बती के साथ संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था कराई। साथ ही वहाँ सीमान्तों की विभिन्न संस्थाओं में भी संस्कृत के साथ भोटभाषा के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था कराकर प्राचीन भारतीय बौद्ध आकर ग्रन्थों का पुनः संस्कृत में रूपान्तरण का श्रेय प्राप्त किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रो० उपाध्याय की इच्छा थी कि जैसे पश्चिमोत्तर सीमान्त की संस्कृति तथा शास्त्रों के अध्ययन की व्यवस्था के लिए विविध संस्थान खोले गए हैं। उसी प्रकार पूर्वोत्तर सीमान्त के लोगों के धर्म, संस्कृति और शास्त्रों के अध्ययन की व्यवस्था भी की जाय। जिससे वहाँ के लोग भी पश्चिमोत्तर सीमान्त के लोगों की भाँति मैदानी सांस्कृतिक धारा के साथ समरस हो सकें। इसके लिए उन्होंने उत्तर प्रदेश सरकार से आचार्य नरेन्द्रदेव के नाम पर अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध शोध संस्थान, 'सारनाथ' वाराणसी में तथा केन्द्र सरकार से पं० जवाहर लाल नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध, संस्कृत विद्यापीठ, कुशीनगर में खोलने की योजना रखी थी। कुशीनगर के भिक्षु संघ ने तदर्थ दस एकड़ भूमि भी देने का वायदा किया था। आवश्यकता पड़ने पर और भी दे सकने की बात कही थी। उत्तर-प्रदेश सरकार ने उनकी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व ही आचार्य नरेन्द्रदेव अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध शोध संस्थान, सारनाथ के विशेष कार्याधिकारी की नियुक्ति कर उनके कार्यों को मूर्तरूप दिया। पर वह प्रगति नहीं कर सका।

इस अन्तर्राष्ट्रीय विद्यापीठ में प्रो० उपाध्याय के अनुसार पूर्वोत्तर सीमान्तों के शास्त्रों के अध्ययन के लिए विभिन्न पालि स्रोतों के विकास की सम्भावना है। इस शोध संस्थान में सीलोन, बर्मा, और थाइलैण्ड की बौद्ध परम्परा की विशेषताओं का विशेष अध्ययन होगा, जिससे बोधगया और सारनाथ के साथ वहाँ की बौद्ध जनता का सीधा सम्बन्ध बन सकेगा। राष्ट्रीय दृष्टि से यह कार्य बहुत आवश्यक था, जिसे प्रो० उपाध्याय ने चीन के आक्रमण के तुरन्त बाद पहचाना और ल्हासा से पश्चिमोत्तर सीमान्तों का ध्यान हटाकर सारनाथ और बोधगया की ओर आकृष्ट किया।

वाराणसी में न्याय, वेदान्त, साहित्य आदि की जैसी अध्ययन परम्परा प्रचलित थी, विदेशी आक्रामकों के कारण बौद्ध दर्शन तथा पालि की अध्ययन परम्परा उच्छिन्न हो गई थी। प्रो० उपाध्याय ने दो सौ वर्ष पुराने इस संस्कृत विश्वविद्यालय में इन परम्पराओं की स्थापना का कार्य आरम्भ कराया तथा अध्ययन-अध्यापन को विकसित करने का एक स्वरूप प्रस्तुत किया। इस परम्परागत स्वरूप को प्रस्थापित करने में जो बाधायें थी, उन्हें दूर करने का उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया। इसको तिब्बती भाषा से संस्कृत में भाषान्तर कराकर तथा पाण्डुलिपियों का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पादन कराकर प्रारम्भ किया। इस महनीय कार्य को व्यवस्थित कराने में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, पं० विधुशेखर भट्टाचार्य आदि के प्रयत्नों का संबल भी उन्हें प्राप्त हुआ। फलतः सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में बौद्ध दर्शन और पालि में परम्परागत अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था प्रारम्भ हो सकी।

स्मरणीय है कि प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के सर्वप्रथम बौद्धदर्शनाचार्य थे।

(ख) भारत की सांस्कृतिक एकता का बोध

प्रो० उपाध्याय ने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आन्दोलन में जनजीवन में व्याप्त सांस्कृतिक विसंगतियों को जितने नजदीक से देखा था उसे दूर करने की टीस उनके मन में सदा से उठती रही थी। उन्होंने भारत के विभिन्न अंचलों में घूम-घूम कर वहाँ रहने वाली विभिन्न जातियों, उपजातियों, जनजातियों और अनुसूचित जातियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझने का प्रयत्न किया। और उसे एकीकृत करके उस मूल बीज को ढूँढ़ निकाला जिससे सम्पूर्ण देश की सांस्कृतिक एकता प्रतिष्ठापित हो सके। एक कुलीन वंश में पैदा होने के नाते जिस प्रकार सवर्ण-संस्कृति का बोध काशी की विज्ञमंडली से उन्हें प्राप्त हुआ उसी प्रकार स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में समाजवादी लोगों के सम्पर्क के कारण उनमें दलित जनता के उत्थान के प्रति भी बोधिसत्व भाव जगा। फलतः उन्होनें जनजातियों में घूम-घूमकर उनके पूजापाठ, उनके धार्मिक क्रिया-कलापों, सामाजिक मेल-मिलाप आदि का अध्ययन किया और उस आधार पर उनकी संस्कृति को पहचानने का प्रयत्न किया। इसके परिणाम स्वरूप उन्होंने जन जीवन में भी प्रवेश कर अस्पृश्य एवं दलित लोगों के दुःख-दर्द को समझने का प्रयत्न किया। दलितों एवं असवर्णों की दीन दशा देखकर वह डॉ० अम्बेडकर से भी प्रभावित हुए। अतएव जनजातीय जीवन की मेलमिलाप वाली संस्कृति के प्रति वे अभिमुख हुए। और उस संस्कृति को प्रगाढ़ स्वरूप प्रदान करने वाले बौद्ध धर्म में उनकी आस्था जगी। वह इसी आस्था के संबल से दलितों में वह उदात्त भाव भर देना चाहते थे। जिससे कोई मानव समाज अपने को श्रेष्ठ बनाता है। इस काम को उन्होंने बुद्धानुभाव से पूर्वी उत्तर प्रदेश, दिल्ली,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाराष्ट्र और बिहार प्रांतों के असवर्णों में प्रतिष्ठापित किया। और जीवन के अन्तिम दिन तक सामान्य आदमी के उद्धार की सांस्कृतिक व्यूह रचना करते रहे। उन्हें बुद्ध का 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का सन्देश अत्यन्त प्रिय लगा और उसकी प्रतिष्ठा के लिये उन्होंने प्राणपन से प्रयत्न किया।

एक ओर वह आम आदमी के दुःख-दर्द को दूर करने के लिये आम आदमी के आत्मसम्मान के उद्बोधक बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख हुए तो दूसरी ओर भारतीय परम्परावादी संस्कृति के सांस्कृतिक गौरव को भी मूल्य देते रहे। वह चाहते थे कि भेदभाव पर आधारित मिथ्या भेद की दृष्टि समाप्त कर समग्र मानव की ऐक्य दृष्टि को प्रस्थापित किया जाय, जिससे ऊँच-नीच का भाव न पनप सके। भारतीय-संस्कृति के इस आध्यात्मिक संदेश को उन्होंने समाज में उतारने का प्रयत्न कर सहस्राब्दियों से चली आ रही भारतीय संस्कृति की उस उदात्त चेतना की ओर इंगित किया, जहाँ पहुँच कर मनुष्य सब कुछ छोड़ देता है और समरस बन जाता है।

प्रो० उपाध्याय का यह चिन्तन शास्त्र पर आधारित था, पर मात्र वह शास्त्र और चिन्तन में ही आबद्ध नहीं रहा। प्रत्युत उन्होंने एक समग्र संस्कृति को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, जहाँ किसी प्रकार का भेद खड़ा न हो सके। उनकी क्रिया में इसके अनेक उदाहरण प्राप्त किये जा सकते हैं।

(ग) समतावादी चिन्तन

इधर स्वतंत्रता के बाद देश में किस प्रकार मानव समता के मूल्य को प्रस्थापित करने के लिये प्रयत्न हुए इस पर भी प्रो० उपाध्याय ने विचार किया। और जैसे-जैसे काल क्रम में उन मूल्यों के प्रति राजनीतिज्ञों ने अनास्था प्रकट की, वैसे-वैसे समाज में समता की जगह विषमता पनपने लगी। फलतः जातीय, सांप्रदायिक, प्रांतीय, भाषा आदि के आधार पर दंगे पनपने लगे और देश की एकता के विखण्डन का खतरा महसूस होने लगा। प्रो० उपाध्याय आचार्य नरेन्द्रदेव के सहयोगियों में अन्यतम रहे थे। अतएव वे उनके बौद्ध चिन्तन की विधा तथा सामाजिक चिन्तन की दृष्टि से भी प्रभावित रहे हैं। इन विखण्डन मूलक प्रवृत्तियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के कारण समय-समय पर देश में जो विसंगतियाँ खड़ी होती गई। उनको दूर करने की ओर भारतीय चिंतको का चिंतित होना स्वाभाविक है। कुछ लोगों ने इन विसंगतियों को दूर करने के लिये आधुनिक युग के धर्मनिरपेक्षता, स्वतन्त्रता, समता आदि मूल्यों को उभारने का सतत प्रयास किया था। वह मानते थे कि भारत में धार्मिक चिंतन का पूर्णतः अपलाप नहीं किया जा सकता, पर वह चिंतन सम्प्रदायवादी न होकर उदारवादी स्वातंत्र्योन्मुख होना चाहिये। उन्होंने धर्माधारित धर्म निरपेक्षता के आधार प्रादेशिकता, भाषागत अहंता, आदि के लिये भी कुछ निदान निकाले थे। उनकी मान्यता थी कि धर्म का सम्बन्ध किसी भाषा या किसी प्रदेश के भूखण्ड से नहीं होना चाहिये। क्योंकि इन्हीं संकीर्ण प्रवृत्तियों के कारण भारत का विखण्डन हुआ था। और पुनः इस प्रकार के विखण्डन का स्वरूप पंजाब, असम, पश्चिमी बंगाल और मिजोरम आदि अंचलों से पनप रहा है। इस अलगाव को दूर करने के लिये भी भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना होगा। और उसके अनुकूल जन-जन में उस धर्माधारित धर्मनिरपेक्षता को प्रस्थापित करना होगा।

यह धर्मनिरपेक्षता प्राचीन काल में सन्तों के द्वारा प्रस्थापित हुई थी। भारत के सन्तों ने सुदुर प्रान्तों में घूम-घूम कर उस आध्यात्मिक समता को प्रस्थापित करने का प्रयत्न किया था जिसे प्रो० उपाध्याय ने बुद्ध, महावीर, नानक, कबीर, तुकाराम आदि सन्तों और सिद्धों में देखा था। वह इस सन्त परम्परा को पुनः विकसित करके आध्यात्मिकता के आधार पर समग्र भारतीय लोगों में समत्व की स्थापना करना चाहते थे। एतदर्थ उन्होंने आनेवाले अक्टूबर में इस पर विचार-विमर्श के लिये गोष्ठी आयोजित करने का व्रत लिया था। दुर्भाग्यवश उनके असामयिक निधन से उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी। किन्तु वह पूर्ण की जायेगी जिसको उन्होंने अपने जीवन में घूम-घूम कर सन्तों की भाँति पूर्ण करने का प्रयत्न किया।

(घ) प्राचीन भाषाओं के प्रति ममत्व

प्रो० उपाध्याय राष्ट्रीय चेतना के विकास लिंये प्राचीन उपेक्षित सांस्कृतिक भाषाओं को भी मूल्य प्रदान करते थे। किन्तु उन भाषाओं को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सांस्कृतिक मूल्यों का उद्बोधक मानते थे। वे इस पक्ष के विरोधी थे कि कोई भाषा किसी विशेष धर्म की संवाहिका बने। उन्होंने संस्कृत भाषा के बहुआयामी स्वरूप को देखकर भारत में भाषागत विभेद को समाप्त करने का एक सार्थक प्रयत्न करना चाहा था। वह एक ऐसी योजना प्रस्तुत करना चाहते थे जिसमें धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संगति दिखाई दे। इस दृष्टि से प्रो० उपाध्याय ने सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में श्रमण-ब्राह्मण धाराओं की भाषाओं के अनुमेलन के लिये एक पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ किया था। वह परम्परा से प्राप्त अपने आदिगुरु रामबालक शास्त्री के द्वारा संचालित 'गाण्डीवम्' संस्कृत साप्ताहिकम् को इस रूप में विकसित करना चाहते थे कि वह परम्परागत संस्कृत की सुरक्षा के साथ-साथ पालि-प्राकृत भाषाओं का भी संवाहक बन सके। विशेषाङ्क के माध्यम से उन्होंने संस्कृत की इस पत्रिका में पालि और प्राकृत का अवश्य समावेश किया था किन्तु प्रति सप्ताह प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका में पालि और प्राकृत के लिये नियत स्थानों का संयोजन नहीं कर पाये थे। क्या ही अच्छा होता कि प्राचीन विपरीत धाराओं की संवाहिका भाषाओं की सहभागिनी के रूप में आने वाले दिनों में इस पत्रिका का प्रकाशन होता। यह कार्य जितना विस्तृत आयाम पकड़कर किया जायेगा उतना ही प्रो० उपाध्याय के पारम्परिक सांस्कृतिक सहधर्मिता का भाव भी आगे बढ़ेगा।

भारत वर्ष की इन प्राचीन भाषाओं का यदि एकत्र समावेश करके उन्हें एक संस्कृति की सहगामिता दे दी जाय तो इसी सिद्धान्त के आधार पर विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं का भी सहगामित्व बन पायेगा। प्रो० उपाध्याय इस दृष्टि के सचेत विचारक थे। उन्होंने १९७६ से १९८६ तक संस्कृत-साप्ताहिकम् 'गाण्डीवम्' निकाल कर अपने गुरु रामबालक शास्त्रीकी परंपरा को आगे बढ़ाया है और उसे नियमित बनाकर पत्रकारिता के क्षेत्र में संस्कृत को प्रतिष्ठापित किया है। आगे के दिनों में उनकी यह प्रतिष्ठापना उनके शिष्य श्री राधेश्यामधर द्विवेदी के द्वारा सम्पन्न की जा रही है।

राजनीति के कारण जब संस्कृत भाषा के ऊपर प्रहार किया गया तो उन दिनों प्रो० उपाध्याय ने कई प्रकार के आन्दोलनों की शुरुआत कराते हुए ३१ दिसम्बर १९७९ को कहा था—'संस्कृतज्ञों को किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पार्टी के पक्ष या विपक्ष में आन्दोलन नहीं छेड़ना चाहिये और राजनीतिज्ञों से अपील की थी कि संस्कृत को राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिये महत्वपूर्ण दर्जा मिलना चाहिये, इसके स्तर का निर्धारण प्रादेशिक सरकारों द्वारा न होकर राष्ट्रीय सरकार द्वारा होना चाहिये तथा त्रिभाषा-सूत्र में इसे स्थान प्राप्त होना चाहिये। इस प्रकार सांस्कृतिक धरोहर की संवाहिका संस्कृत भाषा के उन्नयन के लिये प्रो० उपाध्याय ने तदर्थ आन्दोलनों का संचालन भी किया।

(ङ) दलित वर्ग में सांस्कृतिक चेतना के उद्भावक

प्रो० उपाध्याय की यह मान्यता थी कि मनुष्य जिन परिस्थितियों में रहता है, उसकी चेतना उसी के इर्द गिर्द घूमती है। इसीलिये हिन्दुस्तान का आभिजात्य वर्ग सदियों से दलित वर्ग पर शासन करता रहा है। वर्तमान युग के सन्दर्भ में उन्होंने दलित वर्ग की चेतना को जागृत करने के लिये भारत की उस सांस्कृतिक चेतना को उजागर करने का प्रयत्न किया, जिसमें सबके लिये सम्मानपूर्ण स्थान था। इस संदर्भ में बौद्ध संस्कृति का अध्ययन उन्हें संतोष प्रदान कर सका। उन्होंने देखा कि भगवान बुद्ध की संघ व्यवस्था में उस प्रकार के जातिगत विभाग नहीं प्राप्त होते हैं जिस प्रकार के विभाग-वैदिक व्यवस्था में उपलब्ध होते हैं। वहाँ एक तरफ नापितपुत्र उपालि भगवान् बुद्ध के प्रिय शिष्यों में उच्च स्थान प्राप्त करता है, और वहीं चाण्डाल मातङ्ग उच्चतम पद को प्राप्त करता है, जिसकी सेवा ब्राह्मण और क्षत्रिय सभी लोगों ने की।

बुद्ध की संघ व्यवस्था इतनी प्रजातंत्रात्मक थी कि उससे आज के प्रजातंत्र को प्रेरणा लेनी चाहिये। बुद्ध के सात अपरिहाणीय धर्मों के आधार पर संघ व्यवस्था को प्रथम प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था मानते थे और उससे प्रेरणा ग्रहण करते थे। उन्हें 'मा पुच्छि जातिं, चरणं च पुच्छि' इत्यादि वाक्य व्यक्ति के आचरण को ठीक करने के लिये अच्छे प्रतीत होते थे, तो वहीं संघ को महासमुद्र मानकर सबमें समरसता का अनुभव करने का उपदेश भी उन्हें प्रिय लगता था। भगवान् बुद्ध ने तत्कालीन समाज में परिव्याप्त विसंगतियों को दूर करने का जिस तरह प्रयत्न किया था, उसी प्रकार प्रो० उपाध्याय ने दलित वर्ग की चेतना को समझ कर उनमें आत्म सम्मान भरने के लिये बाबा साहब डॉ० अम्बेडकर और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की सरणी का अनुगमन किया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीयता की अक्षुण्ण परंपरा में पनपी हुई विसंगतियों को दूर करने के लिये उन्होंने दलितवर्ग में उस चेतना का परिवर्धन किया, जिससे व्यक्ति अपना अभ्युत्थान स्वयं कर सके। वह भारतीय प्रसुप्त चेतना को सतत उद्दीप्त करने के लिये सदा प्रयासरत रहते थे। वह सांस्कृतिक स्फूर्ति दलितों में कैसे उत्पन्न हो इसके लिये वह सतत चिन्तित रहा करते थे। इस प्रकार की बोधिसत्व वृत्ति को आगे बढ़ाने की उनकी चिन्ता को अग्रिम गति देना उनकी स्मृति कों कायम रखना होगा। इस प्रकार बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय का समसामयिक युग के सन्दर्भ में महत्व आँका जाना चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रा० उपाध्याय की दार्शनिक सोच

जीवन की समस्याओं से दर्शन को दूर नहीं रहना चाहिए उसको लक्ष्य प्रधान बनाया जाना चाहिए। भारत की आध्यामिकता का अर्थ होना चाहिए व्यवहार में उच्च मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करना। जितने अंश में दर्शन को व्यावहारिक प्रयोग के क्षेत्र में सफलता मिलेगी उतने ही अंश में उसकी प्रयोजनवत्ता और यथार्थता सिद्ध होगी। इस प्रकार दर्शन की प्रामाणिकता की प्रमुख कसौटी होगी व्यवहार परायणता, व्यक्ति और समाज की।

मनुष्य को इस सामञ्जस्य को बैठाने के लिए वादों तथा आग्रहों से मुक्त होना चाहिए। क्योंकि ये धर्म के साथ या सिद्धान्तों के साथ जुटकर समस्या पैदा करते हैं। चिन्तन को इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष तथा वाद निरपेक्ष भी बनना चाहिए। भारतीय दर्शन वादाग्रह के कारण वकील का काम करते हैं। उन्हें न्यायाधीश के रूप में अपने को प्रस्तुत करना चाहिए। पाश्चात्यदर्शन वैज्ञानिक दृष्टिकोण को रखकर विज्ञान के आधार पर मानवमूल्यों के क्षेत्र में हस्तक्षेप करते हैं। इससे मानव के व्यक्तिगत गुण ह्रसित होते हैं और मानव सम्मान पर आंच आता है। अत: प्रकृति की शक्तियों की अधीनता के स्थान पर मनुष्य के सर्वोत्तम सम्मान तथा उसकी व्यक्तिनिष्ठ उत्तमता की रक्षा की जानी चाहिए। व्यक्ति की उत्तमता साम्यवादी समाज में संभव नहीं है। क्योंकि वह भौतिकवादी अवधारणा पर आश्रित है। जबकि मानव का प्रमुख लक्ष्य है आध्यात्मवाद को जीवन में प्रतिष्ठित करना। सर्वोत्तम सम्मान तभी मिल सकता है जबकि व्यक्ति के गुण विकसित हो। और वे बिना किसी का अहित किये सामाजिक मूल्यों की ओर व्यक्तियों को आत्म अनुशासन से प्रेरित करें। यह अनुशासन आत्मनिष्ठ वैयक्तिक गुणवत्ता से विकसित होगा जिसमें समीक्षा बुद्धि हो और अच्छाई के प्रतिष्ठापन होने का भाव बना रहे। समाज के अच्छे स्वरूप की प्रतिष्ठा में यह व्यक्ति की समीक्षात्मक गुणव्यवस्था लाभकारी होती है तथा इससे व्यक्ति का समाज के प्रति प्रेम विकसित होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसदीय ज्ञान ने व्यक्ति को एक धारा में सोचने की जो बाध्यता बना दी है उससे भी मुक्त होने की आवश्यकता है। पर ध्यान में रहे कि इस संसदीय बोध की धारा का समापन किसी अज्ञात ध्रुवसत्य पर नहीं प्रत्युत मनुष्य की समाज को बाँधने वाले या पीड़ित करने वाले अन्त: समीक्षात्मक बोध पर हो। समाज जानकारी पूर्वक बढ़ाया जाय, नियति पर आधारित न बढ़े। इस प्रबोध में मानव निर्माण स्वातन्त्र्य, गुणवत्ता, प्रेरकता तथा आध्यात्मिकता का सर्व समन्वित भाव हो। इस भाव के उदित होने पर व्यक्ति में रहने वाला समग्र स्वार्थमय अहंता के साथ अस्तित्व का भी टूटन हो जाता है। उससे वह न घबड़ाये और न उसके व्यापक अस्तित्व बनाने की ओर से मुँह मोड़े।

व्यक्ति और समाज का ऐसा अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है कि व्यक्ति कभी-कभी अपने को समाज निरपेक्ष बनाकर स्वनिष्ठ बन सबसे ऊपर उठा हुआ मान लेता है। यह प्रवृत्ति घातक है। समाज का भी स्वरूप ऐसा नहीं बनना चाहिए कि व्यक्ति का स्व जो गुणों के विकास करने का आधार है तोड़ दिया जाय या नियति के हाथों बिककर किंकर्तव्य-विमूढ़ बन जाय। उसकी क्रियाशीलता तभी बनी रहेगी, जब वह निर्माता बने। पर ध्यान रहे कि वह दूसरे का मात्र पथ प्रदर्शक होगा, निर्माता नहीं। निर्माताभाव का बचा रहना उसकी ईश्वरता को न बढ़ाये। यह उसकी क्रियाशीलता मात्र की ओर संकेत करता है। यह सतत गुणवत्ता को विकसित करने का प्रयास समाज में गुणवत्ता को मूल्य देने के लिए होगा।

समाज में गुणवत्ता का विकास तथा धर्मातीतता का विश्लेषण होना चाहिए। धर्मातीतता, धर्म के स्वभाव के अस्तित्व के विश्लेषण पर नहीं टिकता है। अतएव मनुष्य को धर्म के गुणवत्ता वाले पक्ष से अतीत नहीं होना है। प्रत्युत उसमें घुसेड़ी गयी क्षुद्र मान्यताओं से अलग होना चाहिए। जो मानव के विकास में बाधक है। हम देख चुके हैं कि धर्म के नाम पर इस देश का एक विभाजन हुआ, और पाकिस्तान बना। हम यह भी देख चुके हैं कि भाषा के नाम पर एक और विभाजन हुआ और बंगलादेश बना। भारत में पंजाब और हरियाणा के बँटवारे में भी ये संकीर्ण धर्म और भाषा कारण रहे हैं। इनके आधार पर झगड़े खड़े हैं, खड़े हो रहे हैं, और खड़े किये जा रहे हैं। चिन्तन के क्षेत्र में भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मान्यताओं के झगड़े खड़े होते हैं, और मान्यतायें बनाई और तोड़ी जाती हैं। उनसे कर्ता के जीवन में बदलाव आते हैं। पर उससे समाज प्रभावित नहीं होता। समाज, प्रभावित तब होता है जब व्यक्ति मान्यता को भविष्य प्रमाणिकता का जामा पहनाया जाता है और सामने खड़ा कर दिया जाता है। इसी दृष्टि से विकास सम्भव है। मानव का तब तक व्यक्तिगुण सामूहिकता में पनप नहीं पाता। जब तक वह ईमानदार न बनकर समाज में सम्मान के लिए, जो सबको या उस खेमावाले समाज को रुचिकर लगे, वह करने लगता है। उस समय उसका विवेक वकील का विवेक बन जाता है न्यायाधीश का नहीं। फलतः झगड़े, वाद, संघर्ष खड़े होते हैं। इन्हें साम्प्रदायिक, प्रास्थानिक या इज्म का रूप देकर इसके गुटों के स्वार्थ खड़े कर दिये जाते हैं और धर्म, सत्य, गुणवत्ता को तब तक ताख पर रख दिया जाता है।

चिन्तन के क्षेत्र में यह काम चिन्तक करता है। समाज के क्षेत्र में यह काम समाज विचारक करता है। सम्प्रदाय के क्षेत्र में यह काम धर्माधिकारी करता है। इससे उपर उठकर सोचना ही धर्मातीतता है, आग्रह्यमुक्तता है, निःस्वभावता है, सर्वमयता है। इसे जिस विशेषता से योगी प्रज्ञा के आधार पर व्यक्ति में प्रतिष्ठापित करता है। उसी विशेषता के साथ चिन्तक नेता भी समाज में प्रतिष्ठित करता है। इसके लिए पर्यावरण बनाने की आवश्यकता पड़ती है। मानव की दुर्मुख प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने की ओर बढ़ना पड़ता है समाज आगे बढ़ रहा है, कि नहीं इसका परीक्षण प्रतिक्षण करना पड़ता है। यदि वह इस अग्रगामिता में पीछे मुड़ता है तो उसकी समीक्षा बुद्धि जो आत्मविश्वास का उसमें गिरावट नज़र आती है। दूसरे की देखादेखी अपने को दूसरे से बचाती है वह मानव गुणों को विकसित करने की ओर ध्यान नहीं देता, क्योंकि साम्प्रदायिकता प्रस्थानवाद तथा समानतावाद के भाव उसे पीछे घसीटते हैं। अगर आगे बढ़ता है तो अकेला बन जाता है। अनागत का अज्ञान भय पैदा करता है। अतः वस्तुस्थिति, धर्मात्मतत्व, समत्वभाव आदि का व्यक्तिनिष्ठ विश्लेषण करके सम्पूर्ण जीवनगत अनुभवों की विपरीतता या समन्वयता में प्रतिफलित कर देता है। यह कैसे खेमों से, तथा वाद से, ऊपर उठें इसका सतत चिन्तन करना तथा उनमें न फँसने के लिए पर्यावरण बनाना दार्शनिक का कर्तव्य है। उसे केवल टेबुल पर बैठकर बंदकमरे में नहीं प्रत्युत समाज में उतर कर लोगों के बीच काम करने की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जरूरत है। चिन्तन को व्यवहार जगत में लाना और उससे समाज में परिष्कार का स्वरूप खड़ा करना एक महनीय कृत्य है।

इस कृत्य के सम्पादन में दार्शनिक वस्तुस्थिति का विश्लेषण करता है। वह वस्तु की अन्तिम स्थिति को समझना चाहता है। वस्तु के विश्लेषण में उसकी तार्किक बुद्धि वस्तु का स्वरूप नहीं खड़ा कर पाती। फलतः वह उसका अनस्तित्व मानकर व्यवहारिक जगत को कल्पना पर आधृत मान लेती है। यह इस पर भी विश्वास करने लगता है कि वस्तु से आगे जो तार्किक परिणति में वस्त्वतीतता है सम्भवतः वह ही सत्य है और जगत प्रपञ्च है, माया है, मिथ्या है, अतः प्रपञ्च, माया, मिथ्या के आधार पर व्यवहार की व्याख्या करता है। इससे वह जागतिक सत्यों से कतराकर काल्पनिक सत्य की ओर उन्मुख बन जाता है। वह सामाजिक व्यवहारों से उकताकर व्यक्तिगत गुणों को विकसित करने की ओर बढ़ता है। उसका यह बढ़ाव आध्यात्मिकता के नाम से जाना जाता है। जगत तथा सामाजिक व्यवहार से खिंचकर एकान्त प्रियता को बढ़ाना सत्य मान लेता है। इसे टूटना चाहिए और चिन्तक का वैराग्य हटकर समाज के व्यवहार के बदलाव में लगना चाहिए। यह नहीं जो एकान्त कमरे में सटीक लगकर बुद्धि के तर्क जालों तक ही सिकुड़ी रहे।

व्यवहार और परमार्थ के इस स्वरूप का जिस प्रकार सामान्यीकरण बन सके, वह ही जीवन का उद्देश्य होगा। ऐकान्तिकता मृत्यु है, सामाजिकता जीवन है। प्रो० उपाध्याय ने इस सत्य को पकड़ा था और जीवन के अन्तिम दिनों में जब उन्होंने थोथी तर्क प्रवणता से अपने कृत्यों का आकलन किया तो उन्हें लगा कि तन्त्रों का समग्र जीवन के बीच जो पंकज की भाँति अनालिप्त रहने का स्वरूप है। वह ही दार्शनिक का जीवन होना चाहिए। अन्तिम समय में अवकाश ग्रहण के बाद तन्त्र शास्त्र के अध्ययन में लिप्त होते गये, साथ ही सामाजिक विसंगतियों के समापन के लिए क्रियाशील होते गये। उत्तर प्रदेश नागरिक परिषद् के सदस्य की हैसियत से जो शान्ति प्रस्थापन का काम उन्होंने वाराणसी नगर में किया, वह बेजोड़ है। वह जनता के हृदय में पहुँच कर उसके अध्ययन को बदलने का काम कर रहे थे। दूसरी तरफ इस अध्याशय के पवित्रीकरण की पृष्टभूमि तैयार करने के लिए ऐसे वैचारिक क्रान्ति के संस्थानों, प्रकाशनों तथा क्रियाशील गतिविधियों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भाग लेते रहे। उन्होंने इन गति-विधियों में व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा पर वह उससे उकताते नहीं थे। अपने को उद्देश्यों के प्रति समर्पित मानकर वे जागतिक प्रपञ्च को तालाब का कीचड़ मानते रहे। इस समग्रता की दृष्टि ने उनको सभ्य नागरिक, सुसंस्कृत विचारक, व्यवस्थित समाज सेवी, व्यावहारिक योगी का स्वरूप दिया जो आने वाली पीढ़ी के लिए निर्देशक बने रहेंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकदर्शन तक पहुंचने के सोपान

यह सत्य है कि व्यक्ति जीवन के तथ्यों का स्वरूप जब साक्षात्कृत होता है तो व्यक्ति उसको प्राप्त करने के लिए छटपटाता है। प्रो० उपाध्याय की यह विनीत छटपटाहट पण्डित समाज, आदर्श तथा जीवन स्वरूप की विसंगतियों का प्रतिफल था। इसलिए वह वेदान्त से बौद्धदर्शन, बौद्धदर्शन से व्यापक सांस्कृतिक, सामाजिक सोच के साथ साम्प्रदायिकता के विष से लड़ने के लिए तैयार हो ही रहे थे जबकि अकस्मात् ही वे नही रहे। उनके इस बौद्धिक विकास का क्रम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है।

बौद्धदर्शन की दृष्टि से सामाजिक झुकाव

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने वेदान्ताचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की थी और वेदान्त के प्राध्यापक थे। गांधीवादी जमाने की उपज होने के कारण प्रत्येक गांधीवादी चिन्तक अपने जीविकावृत्ति के साधनों में गांधीवादी प्रवृत्ति को परखना चाहता था। फलतः प्रो० उपाध्याय ने वेदान्त के गहन गम्भीर अध्यात्म का परीक्षण करना प्रारम्भ किया। उन्हें वेदान्त के विचार कुछ अनूठे लगे जो वादशैली तथा तत्त्वविश्लेषण में बड़े अच्छे लगते हैं, पर जीवन में वह आ नहीं पाते हैं। उन्होंने जिन गुरुओं से पढ़ा उनके जीवन में भी विसंगतियाँ थी। वे वेदान्त को पोथी तक ही सीमित रखना चाहते थे। प्रो० उपाध्याय इससे कभी भी संतुष्ट नहीं हुए तथा बराबर चिन्तन में लगे रहे। ज्ञान को जीवन में आने पर ही सही ज्ञान कहा जा सकता है। अगर वह जीवन में अनुभूत नहीं होता तो वह कैसे माना जाये। वे शंकराचार्य की पंक्तियों को गुनगुनाते थे तथा कहते थे। परमसत्य का बोध हो जाने पर वर्ण तथा वर्णाश्रम का भेदभाव नहीं रह जाता है। वहाँ धारणा, ध्यान और योग भी समाप्त हो जाते हैं। अध्यास के नाश से मैं अनात्म होकर एक कल्याणकारी शिवमात्र रह जाता हूँ! माता-पिता, वेद-लोक, वेद-यज्ञ तथा तीर्थ भी पृथक्-पृथक् नहीं कहे जा सकते। सुषुप्ति में जैसे सम्पूर्ण समाप्त होकर शून्य रूप रहता है वैसे मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी इन प्रापञ्चिक जगत से भिन्न जीव शिवमात्र हूँ। सारे सम्प्रदाय, ऊंचनीच, गुरु-शिष्य, शुक्ल-पीत, जाग्रत, स्वप्न भेद आदि सब समाप्त होकर मात्र कल्याणकारी ब्रह्म ही शिवरूप में रहता है।

इन पंक्तियों के साथ प्रो० उपाध्याय की गहन निष्ठा थी पर वह इनकी परख भी करते रहते थे। उन्हें तब और ये खोखली लगीं जब शंकराचार्य ने स्वयं इनको लिखकर पुनः इनके विरोध में भी प्रसंग उपस्थापित किये तथा कहा— यदि शुद्र वेद पढ़ ले तो जीभ काट लो। यदि मन्त्र याद करले तो शरीर काट दो, या कान में शीशा गला कर डाल दो। कहा भी है—

शीशा गला के श्रुति में गिरा दो जो शुद्र कोई सुन जाये वेद।

धर्मध्वजों की यह देख लीला शैतान का भी हिलता कलेजा।।

परमार्थ और व्यवहार का यह भेद प्रो० उपाध्याय को सही बोध की ओर उन्मुख नही कर पाया। बौद्ध ज्ञान के विषय में पूर्वपक्ष के रूप में जो बात सूझ रही थी उसका परीक्षण भी वह किया करते थे।

भगवान बुद्ध के बारे में भारतीय मनीषियों के विभिन्न विचार रहे हैं। साम्प्रदायिक मतभेद होने पर भी उनके बड़क्पन के बारे में किसी को संदेह नहीं रहा। स्वामी विवेकानन्द उनको अब तक के अवतरित विश्व के महापुरुषों में सर्वश्रेष्ठ कहा करते थे। प्रो० उपाध्याय को भगवान बुद्ध में वे सब विशेषतायें मिलीं तथा उस समाज में वह मानवीय उच्चादर्श उपलब्ध हुए जो उनकी पुस्तकों में अंकित थे। उनको यह जानकर आश्चर्य हुआ। भगवानबुद्ध के संघ में उनके कुल के नापित महास्थविर उपालि सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर चुके थे। यह विचारों की ऊँचाई से ही संभव था। इसके कारण वह और उदाराशयता से बुद्धदर्शन की ओर उन्मुख हुए। वह यह देखकर चकित थे कि यह सम्प्रदाय वैदिक सम्प्रदाय के प्रत्येक दार्शनिक मान्यताओं के विरोध में अपना मत स्थापित करता है। एक तरफ ईश्वरवाद, आत्मवाद, नित्यवाद, तथा वेदवाद प्रमुख था तो दूसरी तरफ अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, अनित्यवाद तथा अवेदवाद स्थापित किया गया। एक परम्परावादी मानसिकता के लिए यह विरोधी विचार कौतूहल पैदा कर सकता था। फलतः प्रो० उपाध्याय का गांधीवाद से प्रभावित वेदान्ती विचार विहार के अकाल के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वक्त ही क्षीण हो गया और यज्ञीय हविष्यान्न का विरोध कर बुद्ध के अहिंसक यज्ञ तथा पवित्र भाव के यज्ञ के अनुष्ठान से संतुष्ट हो सका।

वह सारनाथ के १४३ फुट ऊँचे स्तूप को देखकर अपनी उत्तरदायित्वपूर्ण संस्कृति के प्रति सतर्क हो जाते थे तथा कहते थे— संभवत: सर्वप्रथम मनुष्य ने संघबद्ध होकर इसी स्थान पर भगवान बुद्ध के उपदेशों से यह नि:संदिग्ध निश्चय किया था कि संसार दु:खरूप है, और यह दु:ख सार्वजनिक है, देवता भी इसका अपवाद नहीं हैं। इस दुस्तर दु:ख का कारण ईश्वर नहीं, तृष्णा है और इस तृष्णा के नाश का उपाय है। उसके कारणों को समझना जो इससे दु:खित मनुष्यों के अनन्त काल की आसुओं के जल की तुलना में सात समुद्रो का अगाध जल बिन्दुमात्र है। ऐसी संवेदना के बिना मानव मन तृष्णा से उबर नहीं सकता है। मानव को शान्त होने के लिए दो अन्तों का त्याग कर मध्यम मार्ग अपनाना पड़ेगा। जिसमें कामोपभोग से विलासमय जीवन का समापन तथा कठोर तपस्या के द्वारा घोर देह दण्ड का भोगना आता है, इन्हें छोड़ना होगा। बुद्ध ऐसे कठोर दु:ख में पड़े मानव के स्वरूप को देखकर अपने निर्वाण के आनन्दभोग को रसहीन मानकर बहुजन के उद्धार के लिए चल पड़े। संभवत: यह गांधी को बुद्ध से प्रेरणा मिली होगी। अतएव बुद्ध का जीवन एवं दर्शन व्यावहारिक तथा जीवन्त प्रतिभासित हुआ।

उन्होंने भगवान बुद्ध द्वारा बतलाये गये मार्ग का शून्यवादी दृष्टि के आधार पर विवेचन प्रस्तुत करते हुए कहा— तथागत का बतलाया बोधिसत्त्व का आदर्श चरित्र नागार्जुन की दृष्टि से प्रकाश में आयेगा। उस आदर्श के अनुकूल चलकर लोक दु:खों से छुटकारा पा सकेगा। 'बोधिसत्त्व ने अपने ऊपर दु:ख इसलिए स्वीकार किया है कि वह दूसरों का अहित एवं दु:ख समाप्त कर सके। शंकर भगवान के विष की भांति दु:ख को मिटाने के लिए बोधिसत्त्व ने स्वयं दु:ख का वरण किया। इसी प्रकार तृष्णा क्षय के द्वारा आत्मविलोप भी आवश्यक है। पर दु:ख को ढोता बोधिसत्त्व लोक की सेवा के लिए आत्मरक्षा करता है। यद्यपि यह प्राचीन बौद्धों में दु:ख का कारण माना जाता है किन्तु महाजन ने इसे जीवन के उत्कृष्ट आदर्श के लिए उपाय रूप माना। इस आदर्श की नागार्जुन ने रत्नावली में विस्तार पूर्वक व्याख्या की है। पर भारतीय लोग अपने उदारवादी आदर्श जीवन के प्रति उपेक्षा रखते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निःस्वभावता या शून्यता को शून्यवादी परमार्थ कहते हैं। यह शून्यता ही सर्व तथा सर्वार्थ को सामने लाती है। पर सस्वभाववादी की दृष्टि में यह संभव नहीं है। क्योंकि उसमें आत्मदृष्टि रूपी तृष्णा सदा वर्तमान रहती है। बुद्ध ने मानव जीवन को बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय कह कर मानवीय पथ की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। सस्वभाववादी शाश्वतवादी होते हैं, अतएव उनके मत में ऐहिकता, मिथ्या तथा मोक्ष सत्य है। पर नागार्जुन की दृष्टि में मोक्षं ऐहिकता के बिना और कुछ भी नहीं। अतएव ऐहिकता को महत्त्व प्रदान कर सर्वहित तथा लोकहित को धर्म और नीति का लक्ष्य बनाया गया है। इनके मोक्ष में अस्ति-नास्ति, पाप-पुण्य, सुगति-दुर्गति, की सीमा समाप्त हो जाती है। कहा भी है—

ज्ञाने नास्त्यस्तिता शान्तेः पुण्यपापव्यतिक्रमः।
दुर्गतेः सुगतेश्चास्मात् स मोक्षः सद्भिरुच्यते।।

नीति तथा धर्म का विश्लेषण करते हुए आचार्य वसुबन्धु ने कहा है— प्रतीत्य समुत्पाद की दृष्टि धर्मों के प्रविचय की दृष्टि है। क्योंकि धर्म पुष्पों की भाँति व्यवकीर्ण है। उनका ज्ञान करना आवश्यक है। और इस परिचयात्मक प्रज्ञा के बिना क्लेशों के उपशम का कोई दूसरा उपाय नहीं हैं। भगवान ने इस उपशम के कारण प्रतीक मन की व्याख्या करते हुए कहा है— जो प्रतीत्य समुदाय को देखता है वह धर्म (बाँह्याभ्यन्तर वस्तुओं) के स्वभाव को देखता है। जो धर्म को देखता है वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है। प्रतीत्य समुत्पाद का ज्ञान ही बुद्धत्त्व बोध है इसके बोध के होते ही सर्व का बोध हों जाता है। प्रतीत्य-समुत्पादसिद्धान्त वस्तु की शून्यता का बोध कराकर सर्व के कल्याण की दृष्टि प्रस्तुत करता है। इन दृष्टियों से प्रो० उपाध्याय प्रभावित हुए थे तथा शास्त्रों में एक दूसरे की दृष्टियों के खण्डन-मण्डन का जो तरीका प्रस्तुत है उसको साकार रूप देने का प्रयत्न करते रहे। इसीलिए उन्होंने बौद्धपरम्परा को साकार रूप देने में अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया।

तान्त्रिकदृष्टि

प्रो० उपाध्याय अपने जीवन के अन्तिम दिनों में तन्त्रयानी परम्परा की ओर भी उन्मुख हुए थे। उन्होने तन्त्रयान की इस उद्धोषणा को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वीकार कर लिया था। कि साधना का साधनात्मक अनुबन्ध सम्भवत: क्षटिति बुद्धत्त्व का लाभ कराता है। कहा भी है—

एकार्थत्वेऽप्यसंमोहात् बहूपायाददुष्क रात्।
तीक्ष्णेन्द्रियाधिकाराच्च मन्त्रयानं विशिष्यते ।।

उद्देश्य की दृष्टि से एकार्थक होने पर भी तीक्ष्णेन्द्रिय बुद्धि के अध्याशयों की दृष्टि से तन्त्रयान का महत्त्व है। इसमें साधक के अध्याशय को ध्यान में रखकर गुह्य उपदेश दिये जाते हैं। प्रो० उपाध्याय जी का एक वर्ग इस तान्त्रिक उपदेश को अधिग्रहण करने हेतु बोधिगया। वहां जाकर परमपावनदलाई लामा से कालचक्र का अभिषेक लिया। इस अवसर पर जवाहरलाल नेहरू फेलोशिप के द्वारा कृत अनुसन्धेय विषय के रूप में कालचक्र की विभलप्रभा नामक टीका का भी विमोचन हुआ। इसका दूसरा भाग अभी प्रकाशित ही होने वाला था कि तब तक प्रो० उपाध्याय नहीं रहे।

प्रो० उपाध्याय एक तरफ शास्त्रों की गंभीरता को परखने के लिए कालचक्र तन्त्र की विमल प्रभा की टीकाओं को नेपाल से पाण्डुलिपियों को लाकर उनके प्रकाशन में रुचिपूर्वक प्रयत्न कर रहे थे। तो दूसरी तरफ कुछ वर्ष पूर्व श्री लंका जाकर १० दिन का श्रमण जीवन भी व्यतीत किया था। श्री लंका में भिक्षु का सम्मान तथा तिब्बती लामाओं की साधना को साथ-साथ चलाने वाले प्रो० उपाध्याय विरले व्यक्ति थे। इस प्रकार श्रावकयान से तन्त्रयान तक तथा अद्वैतवाद से सर्वोदयवाद तक की भीं साधना में तीव्र प्रवीण प्रो० उपाध्याय ही माने जाते थे। वह इस कार्यक्रम को बढ़ाने के लिए सतत कार्यक्रम चलाया करते थे। इन विचार चर्चाओं में भागग्रहीता तथा समायोजक जिस ढंग से विचारों के विकास की संभावना आँकता है। वह यदि सार्थक दिशा लेकर बढ़ता है तो उसे सही माना जा सकता है। यदि उसमें अवरोध उत्पन्न होते है तो संभवत: वह किसी लोभ या स्वार्थ का प्रतिफल है.। उसको तोड़ने का प्रयत्न तभी संभव होगा, जब व्यक्ति स्व को तोड़ दे, तथा स्वार्थ समाप्त कर दे। स्व तथा स्वार्थ को तोड़ना शून्यता को निमन्त्रण देना है। यह निमन्त्रण उपाध्याय जी जैसा फकीर ही दे सकता था। इसीलिए बहुजन का हितसाधक अवश्य ही सर्वजन के कल्याण में लीन हो जाता है जो बिना उपर्युक्त दर्शन के संभव नहीं है। ऐसे व्यक्ति का अपना कोई नहीं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा पराया कहा जाने वाला उसका अपना हो जाता है। अतएव वह जैसे स्वसमुदाय के प्रिय थे। वैसे ही समुदाय ध्वसंकों के भी प्रिय रहे हैं। संभवत: बहुत कम लोग जानते हैं कि उनका सम्बन्ध अतिवामवादी दलों के साथ भी रहा है। उनकी वह सहायता भी किया करते थे। इस परमविसंगति के कारण अपने मित्र वर्ग में वह आलोचना के पात्र बनते थे। पर मित्र वर्ग उनकी अर्जित नि:स्वभावता की प्रतिष्ठा पर यश प्राप्त करता था। अत: उसे साथ देना पड़ता था। दर्शन के क्षेत्र में व्यक्तिगत लगाव का प्रश्न नहीं खड़ा होता है पर व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर सामान्यीकरण किया जाता है। अतएव इसका सर्वथा अपलाप भी नहीं हो सकता है। प्रो० उपाध्याय के इस सर्वजन तथा सर्वशून्यतावादी दृष्टि ने उनकी उदात्तता को अवश्य प्रदर्शित की है।

व्यक्ति में आत्मा की नि:स्वभावतादृष्टि या अनस्तित्व बोध से व्यक्ति का अहं टूटता है पर व्यक्ति तो भावनाओं का ही पुंज है। वह कैसे इन भावनाओं के बिना खड़ा रह सकता है। भावनायें चाहे सद् प्रवृत्तियों से बने या असद् प्रवृत्तियों से, पर बिना उनके स्व के अस्तित्व के, वह किस धरातल से खड़ी होगी। माना की व्यक्ति घर में पैदा होकर घर का राग समाप्त कर सर्वजन तथा स्वस्वरूपबोध के लिए भिक्षुत्व ग्रहण करे पर वह बहुजन हिताय का तात्पर्य सर्वजन कैसे बनाता है इसके प्रति भी वह गहन चिन्तन किया करता है। बुद्ध ने आत्मा का समापन किया पर व्यक्ति के निर्माण का रास्ता बतलाया। उस तत्त्व ज्ञान की ओर उनका ध्यान गया जो सब को नहीं बतलाया जा सकता था। अतएव गिने चुने श्रद्धालुजनों को ज्ञानोपदेश दिया। उनसे बहुजन हिताय कार्य सम्पन्न कराने हेतु कार्य करने का निर्देश दिया। निश्चित ही बुद्ध जानते थे कि जो तत्त्व-ज्ञान समाधिप्राप्त बुद्ध का है वह सामान्यजन का नहीं है। पर सामान्यजन के कुशल का एकभाव जनता में व्याप्त है। अत: बहुजन के कल्याण का भाव यदि उपदेशक, द्रष्टा तथा शास्त्र में आता है तो शून्यता की दृष्टि भी शनै:-शनै: घर करेगी। जैसे-जैसे उपदेशकों का या अनुयायियों का अध्याशय परिपूत हो व्यापक हित की दृष्टि को बढ़ायेगा वैसे-वैसे संसार तथा वस्तु के स्वभाव की दृष्टि विशृंखलित होगी। वस्तु के स्वभाव की सापेक्षता सिद्ध होने पर उसकी नि:स्वभावता सिद्ध होती है और तब उस पर से आधारित लोकमूल्य व्यक्ति का स्वहित का न होकर सर्व का होगा। क्योंकि वेत्ता ने वस्तु की नि:स्वभावता का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्त्वबोध किया है जो संभवतः सत्य है। उससे यदि निःस्वभावता वस्तु के ज्ञानाकार ज्ञातता का ज्ञान भी कर सकेगा तो ऐसी स्थिति में परात्मता या सर्वता में भेद कर पाना कठिन होगा। फलतः शून्यतावादी सर्ववादी बने, इसमें भी कोई विरोध नहीं।

प्रो० उपाध्याय संभवतः इस ओर ज्यादा आकृष्ट रहते थे। वह मानते थे विचारों की उदात्तता ही लोकहित कायम कर पायेगी, यदि वह जीवन मूल्य के प्रति सार्थक है। अतएव विसंगतियों, तर्कों तथा संवादों से घबड़ाने का अर्थ तत्त्वाधिगम की तर्क प्रवणता से मुख मोड़ना है। वह विचार क्रम को मूल्य देते थे। सम्प्रदायगत चिन्तक इसको पकड़ना नहीं चाहते। क्योंकि इससे उनका व्यापक नहीं सम्प्रदायगत स्वरूप खड़ा होता है। जो एक विचार और एक आचार का संघ होता है। जो प्रेरक होता है, सहयोग करता है, जो प्रतिरोधी दिशा की बात करता है वह अकेला पड़ जाता है। अतः समझ कर भी संप्रदायगत लोग व्यापक दृष्टि को तार्किक दृष्टि से भले स्वीकार कर लें पर समाज व्यवहार के धरातल पर नहीं स्वीकार करते। कुछ लोग इसे मानते हैं पर सापेक्षता के क्रम में। प्रो० उपाध्याय सापेक्षवादी कार्यतावाद को स्वीकार करने वाले उपाय कुशल चिन्तक थे। अतएव उनका अनस्तित्वाधारित अस्तित्व चिन्तन के साथ समाज के अभ्युदय में भी जोर मारता था। इसीलिए उन्होंने भारत में बौद्ध विचार तथा उसकी सांस्कृतिक पृष्टभूमि' नामक सम्मेलन में प्राप्त अशोक होटल की सुविधा का परित्याग कर अपने साथियों के साथ सामान्य होटल तक अपने को सीमित रखा। जीवन क्रम में उन्होंने अपने को स्वामी करपात्री जी के साथ रखकर भी देहात के सुअरबाड़े का भी आश्रय रखा। यह झक-झोरने वाला व्यक्तित्व उनके अनस्तित्वाधारित अस्तित्व के विचार का प्रतिफल था। उनके आवास, परिवेश में विसंगतियों का आवास होता था। पर वह एक संस्थागत धर्म की ओर झुके हुए थे जो अनस्तित्वाधारित अस्तित्व का चिन्तन रखता है। उसमें ही वह ऊबते तथा डूबते रहे, समझते थे सब लोगों का संस्थागत स्वरूप उसी प्रकार के स्वार्थ का साक्षात्कार करके सम्पन्न हुआ करता है। और उस स्वार्थ के समापन के लिए जैसे व्यक्ति-आत्मा के परिसमापन की आवश्यकता है वैसे संस्था के संगठन के भी परिसमापन की जरूरत है। स्वीकार की गयी व्यक्ति के आत्मा से संस्था की आत्मा बड़ी नहीं बनती। केवल एक समान विचारों के संयोजक लोग मात्र रहते हैं। उनका संयोजक भी स्वार्थ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परक है। इस प्रकार वैचारिक क्रान्ति की भांति संस्थाओं का संगठन जब टूटेगा तब अनस्तित्व खड़ा होगा और उसमें व्यक्तित्व का पराभव होगा, अनात्मतादृष्टि तब जीवन बनेगा।

प्रो० उपाध्याय का अनस्तित्वाधारित अस्तित्व तथा महायान में बहुजन का अर्थ सर्वजन कुछ अजीब सा लगता है। उनका पारम्परिक मूल्यों के प्रति झुकाव तथा संस्थागत धर्मों के प्रति विकर्षण भी अजीब था। वह चिन्तन को समाज हित के सापेक्ष में सत्य या असत्य स्वीकार करते थे। समाज कल्याण तभी किया जा सकता जब उस कल्याणकारक का आत्म अस्तित्व भी बाधक लगे। आत्म अस्तित्व के लिए स्व-परभाव बनाना पड़ता है और यह स्वपरभाव समाज को बाँटता है। अतएव इससे विमुक्ति आवश्यक है। वह इस विमुक्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया करते थे। बुद्ध ने और उपाध्याय जी ने स्वीकार कर जीवन उसका स्थापित किया। वह पारिवारिक थे पर अकेले थे। सामाजिक दृष्टि से वह एक सम्मानित कुल के प्रसूत थे। सम्मानित रूप से जीवन व्यतीत करने की कला के साथ कारूण्यसंचार उनमें था। उनके विचारों से लोग वैसे ही प्रभावित होते थे जैसे बुद्ध के विचारों से। संभवतः बुद्ध का भी प्रभाव राजकीय सम्मान जनक गृहत्याग से बना हो। त्याग जब स्व का होता है तो उससे स्व के सम्बन्धित सम्पूर्ण में आन्दोलन खड़ा होता है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व को बनाता है। ग्रहण भी यदि स्व के व्यापकस्वरूप को जानकर किया जाता है तो उससे व्यापक स्व का लगाव बनता है। इसको प्रेम, आत्मीयता या आत्मबोध की प्रक्रिया कहते हैं। १९५९ से १९८६ तक उनके साथ साथ रहने पर भी मैं उनके इस स्व के अनस्तित्व तथा आत्मप्रबोध के लिये प्रयत्न करने में दोष का भेद नहीं समझ पाया। इस भेद को कदाचित् महायोगी महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज बतलाया करते थे और यह सौभाग्य समझने का मुझ को उपलब्ध हुआ था। मैने कई बार इस बात को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था। पर संस्थागत धर्मों से प्रो० उपाध्याय ने आत्मवादी दृष्टि से अपने को बादं में पृथक् कर लिया था पर जीवन के हर पटल पर उनका आत्मवाद हावी होता है और वह सबमें है इसे उनके जैसा अनात्मवादी विद्वान नहीं मानता। अनात्मवादी होकर भी वह धर्म के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते थे। बुद्धधर्म के प्रति जिस श्रद्धा की अभिव्यक्ति वह प्रस्तुत करते थे। निश्चय ही वह तार्किकता पर आधारित थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह धर्म कि लिए जैसे श्रद्धा को आवश्यक समझते थे वैसे प्रज्ञा का भी महत्त्व मानते थे। उनके मन में भी धर्म के दो साधन थे। श्रद्धा तथा प्रज्ञा। श्रद्धा का अभिप्राय है कि स्वीकृत धर्म के प्रति नित्य निष्ठा जो राग, द्वेष, भय, और अज्ञानवश विचलित नहीं होती। प्रज्ञा वह सत्यज्ञान है जो मनुष्य के सभी विचारों एवं आचरणों की परीक्षा कर उसे लोकहित में नियोजित करती है। श्रद्धा यद्यपि प्रथम है तथापि श्रद्धा को प्रज्ञा से परीक्षित होना चाहिए। प्रज्ञा से परीक्षित श्रद्धा ही धर्माचरण का साधन बनती है। इसके प्रज्ञाबोध से भूतकाल का बोध होता है। यह भूत तथा निःस्वभावता को सिद्ध करती है। निःस्वभावता शून्यता है। शून्यता से सर्व का बोध होता है। 'सर्वं च युज्यते यस्य शून्यता यस्य युज्यते।' सर्वशून्यता से सर्वनास्तिता आती है और तब जगत् का अनस्तित्वाधारित अस्तित्व बनता है। बौद्धदर्शन के ये शाब्दिक जाल प्रो० उपाध्याय को प्रिय थे। अतएव वह कभी-कभी बौद्ध विचारों के पक्ष को प्रस्तुत करते हुए कहा करते थे—

"तथ्य यह है कि शून्यता ही सर्व और सर्वार्थ को सामने ले आती है जो स्वभाववादी की दृष्टि में किसी तरह समन्वित नहीं है— 'प्रभवति च शून्यतेयं प्रभवन्ति तस्य सर्वार्थाः (दि०का०७१)' बुद्ध ने मानव जीवन का उद्देश्य बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय कहा था। महायान का यह सर्व बहुजन है और सर्वार्थ बहुजन का हित है। यहां विशेष ध्यान देने की बात है कि शून्यता न रहेगी तो सर्व नहीं, व्यक्ति रहेगा और सर्वार्थ नहीं स्वार्थ रहेगा। प्रतीत्य समुत्पाद के द्वारा नागार्जुन ने इसे ही स्पष्ट किया है। कार्य की स्वभाव सत्ता नहीं, व्यक्ति नहीं, पदार्थ नहीं है, है सर्व। कहने से तो उस सम्पूर्ण के या व्यक्ति के क्या त्याग से या स्वरूप के निर्माण से उसके पारिवारिकों का योग नहीं यदि यह भी मान लें कि वह तो उसके कर्मफल के संयोग से बना था तो यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रो० उपाध्याय कर्मफल से पुनर्जन्म को नहीं स्वीकार करते थे। उनका तर्क था पुनर्जन्म समाज की दशा से ज्ञात होता है। समाज का पूर्वजन्म होता है व्यक्ति का नहीं। समाज के व्यवहार में अवस्थित व्यक्ति उसे अपने कर्म का फल मानता है। सच्चाई यह है कि सामाजिक विसंगतियों में जन्मा मनुष्य धनी-गरीब, ऊँचा-नीचा, सभ्य-असभ्य, बन जाता है। अतएव सामाजिक विसंगतियों को दूर किया जाना चाहिए। इसको दूर करने की सामूहिक चेतना अत्यावश्यक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और वह पैदा की जानी चाहिए। यदि वह पैदा कर दी जाय तो सामाजिक वैषम्य समाप्त हो जायेगा।

ऐसी स्थिति में पैदा होने वाला हर बालक समान स्थिति में खड़ा होगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति आत्मलाभ का अधिकारी है तो वह कठिन परिश्रम से ज्ञान प्राप्त कर सकता है और विसंगतियों को दूर कर देने पर पैदा होने वाला तथा मन्द दिखने वाला पर्यावरण तथा अवसर की समानता में आत्मलाभ कर लेगा। मरने के बाद उसको न तो मोक्ष, न निर्वाण, न कृष्णधाम, की आवश्यकता होगी, और न सर्व के हित के लिए अवतार लेने की। भारत में मन्द दीखने वाला खुराना पर्यावरण प्राप्ति पर बुद्धिमान बन जायेगा और नोबुल पुरस्कार जीतकर पुनः भारतीय कहलायेगा।

प्रश्न है कि एक परिस्थिति में व्यक्ति पैदा होता है, बढ़ता है, तथा अपना अस्तित्व बनाता है। उसके अस्तित्व के संवाहक अनेक कारणों में एक परिवार भी होता है। वह अनस्तित्व बोध के लिए नाम मात्र 'इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करके लगाव तोड़ेगा तथा स्व और आत्मीय के परित्याग से सर्व का ग्रहण करने के लिए शून्यता बोध, बोधिसत्ताधिग्रहण तथा मिथ्यात्व ग्रहण करेगा। यहां एक बात बहुत स्पष्ट है कि जिसने स्व तथा आत्मीय का नाश कर दिया वह सर्व तथा संघ का हित या अहित कैसे कर सकता है? यह एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ है। पुनः ऐसे आभासित अनस्तित्वात्मक अस्तित्व वाले मिथ्याओं से समाज में समता तथा पर्यावरण का सुधार कैसे संम्भव होगा ? प्रो० उपाध्याय इसे संभव मानते थे पर भिक्षु जगदीश कश्यप कहा करते थे कि जिस संन्यस्त भिक्षु ने माँ बाप को छोड़कर भिक्षुत्त्व ले लिया उससे समाज हित काम की जिम्मेदारी देना या आशा करना दुराशा मात्र है। संभवतः यह सुभाषित कहा जायेगा जो भारत के प्राचीन वाङ्मय में कूट-कूट कर लिखा गया है। पर जीवन से उसका सम्बन्ध नहीं होता। प्रो० उपाध्याय कहते थे कि अनात्म या अनस्तित्वबोधक भिक्षु अभी नही पैदा हुआ, पर जो इस चित्त को पैदा करके चल पड़ेगा वह निश्चय ही सामाजिक एवं व्यक्ति के दुःख एवं आर्त्तनाद को समापन करने का व्रत धारण करेगा और उससे लोक कल्याण बनेगा।

यहां प्रश्न है कि लोककल्याण कारक भाव उस व्यक्ति में जगा है

RajGuru Math, Shivala, Varanaśi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या नहीं, इसकी परीक्षा कैसे की जाय ? यदि वह गृहत्याग लेकर निर्वाणाभिलाषी का प्रमाण प्रस्तुत करता है तो क्या उसकी चित्तसन्तति भी निर्वाणानुरोधी है इसकी परीक्षा कैसे की जाय ? इस परीक्षा के सन्दर्भ में प्रो० उपाध्याय महायान तथा तन्त्रयान की प्रक्रियाओं के अनुरोध पर बल देते रहे हैं और उनको इससे बल मिला करता था। तन्त्रयान से बहुत आशायें थी पर उनके संघ के व्यक्तियों का स्वरूप स्वनिष्ठ था। जो व्यापकता और ऊर्जास्विता वह चाहते थे संभवतः वह उनको नहीं मिली, जिसका उनको गम (दु:ख) भी था। इसका प्रमाण ८ सितम्बर ८६ का प्रातः कालीन कथन था जब वह चिरनिद्रा की तैयारी में थे।

बौद्ध दर्शन एक तरफ व्यक्ति की आत्मिकसत्ता को अनस्तित्व मानता है तो दूसरी तरफ समष्टि-व्यष्टि का अस्तित्व बनता है यह स्वीकार करता है। प्रो० उपाध्याय ने कहा व्यक्ति या वस्तु की कोई असाधारणता नहीं है असाधारणता का आधार अवयवों का एक सम्पुञ्जनमात्र है इस सम्पुञ्जन से, व्यक्ति चयन की स्वतन्त्रतावश अपने को भला बुरा बनाता है और उसी प्रक्रिया से वह अवन्तर और वाह्य जगत के बीच एक ऐसा सम्बन्ध सूत्र जोड़ता है जो दोनों को एक दूसरे पर निर्भर रखे हुए है। बौद्धों का जन्मान्तर विश्वास उन्हें परलोक की कल्पना करने पर विवश करता है पर उन सभी लोकों में व्यक्ति का सम्बन्ध रागात्मक हैं इन लोकों से समन्वित व्यक्ति की गति या स्थिति आदि की परम्परानुसार व्याख्या भी उसके रागात्मक सम्बन्धों के बीच ही सम्भव होती है। लोकसंस्थानों का यदि पौराणिक रूप छोड़ भी दें तों उनका विभाजन व्यक्तित्व के अनेक स्तरों पर वर्गीकरण से होता है जो व्यक्तित्व की चयन की प्रक्रिया से बाहर नहीं है। स्थूल रूप में वर्तमान जीवन कामलोक का ही है यह व्यक्तित्व के विकास प्रक्रिया में एक स्तर है। व्यक्ति श्रेष्ठगुणों से कामराग से विमुक्त होता हुआ उत्तरोत्तर उच्च भूमियों की श्रेष्ठता उन गुणों का परित्याग कर अकुशल धर्मों को समाप्त करते हुए वर्तमान लोक में आगामी के जीवन की प्रतिष्ठा करता है। इस प्रकार श्रेष्ठ व्यक्तित्व के निर्माण में इहलोक तथा वर्तमान जीवन ही बन पाता है जो उसकी स्वतन्त्रख्यापन की प्रक्रिया पर निर्भर है।

व्यक्तित्व निर्माण की इस प्रतीत्यसमुत्पाद की दृष्टि प्रक्रिया में श्रेष्ठ व्यक्तित्व के विकास की पूरी संभावना निहित है। यह चित्त के कुशल अकुशल कर्मों पर आधारित है। कर्म की यह प्रक्रिया एक सार्वभौम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिद्धान्त पर चलती है जिसे बौद्ध लोग प्रतीत्य समुत्पाद कहते हैं इसका अर्थ है प्रत्येक कार्यकारण- समूहों से पैदा होता है। कार्यकारण की इस प्रक्रिया में जैसे कुशल व्यक्तित्व बनता है वैसे अकुशल भी। इसमें चयन की स्वतन्त्रता व्यक्ति में है। वह शुभ कार्यों को करता हुआ सत्य का यथाभूत दर्शन भी कर सकता है। सत्यदर्शन और सत्यभावना के आधार पर व्यक्तित्व का जो हीन या अकुशल आधार है। उसका परावर्तन हो जाता है। यह जब इस प्रकार से बद्धभूल हो जाय जब व्यक्ति का पूर्व अस्तित्वावधारणा का ही समूह विगलित होने लगता है तब आश्रय परावृत्ति से विशुद्ध नैरात्म्य बोध होगा तथा उसके ही आधार पर लोक में नयी और निष्कलुष मान्यताओं एवं सम्बन्धों की स्थापना होगी।

यह दृष्टि व्यक्तित्व में ऐसी ऊर्जास्विता पैदा करती है कि व्यक्तित्व का नया विध्वंस खड़ा होने लगता है और पुराने संस्कार विश्रृंखलित हो शीघ्र ही नूतनता तथा सरलता का स्वरूप प्रस्तुत कर कई जन्मों के संचित कर्मों का परिभोग का समय भी वैसे ही करा देता जैसे जन्म जन्मान्तरों से खोह में पड़ा हुआ अन्धकार प्रकाश के भटके के साथ समाप्त हो जाता है। इसलिए इस दृष्टिमार्ग के स्पष्टीकरण की प्रथम जरूरत है जिसके द्वारा जन्मखोह का अन्धकार झटके के साथ समाप्त हो जाये। यह दृष्टि दोनों प्रकार से प्राप्त हो सकती है विश्लेषण के तार्किक स्वरूप से या श्रद्धा के आधार पर, गुरुकृपा या शक्तिपात से। इसीलिए तांत्रिक साधना को अत्यावश्यक बतलाया गया है। जो इहलोक में सकल जन्मजन्मान्तरों के संचित या पाप कृत्यों का विघटन कर देती है। यह मार्ग क्षुरस्य धारा तथा गुह्य है। अतएव साधक को अभिषेक मार्ग से जाना पड़ता है। साधक की योग्यता का परीक्षण गुरु करता है। तब उसको इसमार्ग का उपदेश देता है। प्रो० उपाध्याय जीवन के अन्तिम दिनों में इस मार्ग के आश्रय की ओर उन्मुख हुए थे। वह कालचक्र के यौगिक अनुष्ठान तथा बौद्धिक विवेचन की ओर भी मुड़े थे। संभवत: बोधिगया में परम पावन दलाईलामा से दीक्षा की परम्परा में उन्मुख भी हुए थे। उनका जीवन के प्रति यथार्थवादी तथा आदर्शवादी दृष्टि का समन्वय बन सका या नहीं, यह तो उनके विवेचन से ही ज्ञात होगा पर कुछ मामलों में वे सहज तथा परिभूत दृष्टिवाले अवश्य थे। सारी रहस्यमयता के बीच वह यथार्थ को कहने की हिम्मत रखते थे। लोग भी उनके इस स्वभाव से परिचित थे और यह स्वभाव उनको बौद्ध दर्शन के अध्ययन से मिला था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय और सांस्कृतिक चिन्तन

भारतवर्ष की व्यापक संस्कृति का बोध तब तक नहीं हो सकता जब तक उसकी विविधता को न जान लिया जाय। विविधता को समझने के लिए उदारशयता तथा अनजान लोगों के प्रति सहानुभूति अपेक्षित है। सांस्कृतिक परिबोध वहां के रहने वालों में आत्मगौरव को जन्म देता है तथा वे उस समान संस्कृति का दायाद बनकर उस क्षेत्र को मूल्यवान तथा विशिष्ट बनाने की ओर ध्यान देते हैं। सम्पूर्ण पश्चिम के लोग ईसाईयत की समानधर्मता से अपने को जोड़ते हैं तथा उसी के बल पर बाद में समानधर्मता के स्थान पर धर्मनिरपेक्षता कायम करके उदाराशयता को प्राप्त करते हैं और उसके विकास एवं प्रयास के लिए सतत प्रयत्न शील रहते हैं। ईसाईयत के आधार पर पनपा पश्चिम का सांस्कृतिक गौरव चिन्तन की उदारता के आधार पर पंचशील का उपक्रम बनाता है। संभवत: यह उसी बौद्धधर्म के सांस्कृतिक मूल्यों का धर्म निरपेक्षता के क्रम में विकास था जो कभी भगवान बुद्ध के द्वारा प्रसारित किये गये थे। उनके शिष्यों ने इसे फैलाया था। लोकहित सम्पादन की पद्धति बतलाई थी।

सांप्रतिक भारत में स्वतन्त्रता के काल में आचार्य नरेन्द्रदेव का ध्यान इस महत्तम सांस्कृतिक जनतन्त्र विधि की ओर गया था और उन्होंने अपने सम्पर्क में आने वाले विविध विचारधारा के लोगों को उनके अध्याशय के अनुसार इसे समझकर एक व्यापक संस्कृति के आधार पर भारत के महत्त्वख्यापन की ओर ध्यान आकृष्ट किया था। कहा जाता है कि उनकी समाजवादी दृष्टि भी सम्भवत: भारतीय संस्कृति के उदारवादी मूल्यों पर ही विकसित हुई थी। उनके चिन्तन का परिवेश समग्र एशिया का परिमण्डल था। जहां बौद्धविचारों का व्यापक प्रभाव रहा है। इस ओर संभवत: पंडित जवाहर लाल नेहरु का ध्यान आकृष्ट करने में वे सफल रहे थे। राजनीति पर सांस्कृतिक प्रभाव छोड़ने के लिए सांस्कृतिक आदान-प्रदान की विधा की ओर ध्यान आकर्षित करने वाले लोगों में भी आचार्य नरेन्द्रदेव तथा महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को अग्रगण्य माना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा सकता है और इन दोनों के सम्पर्क में प्रो० उपाध्याय के चिन्तन का विकास हुआ था। प्रो० उपाध्याय ने आचार्य नरेन्द्रदेव के एशियाई भ्रातृत्व के स्वरूप का आंकलन सांस्कृतिक चेतना के साथ तो किया ही, शास्त्रीयचेतना भी उसमें प्रमुख थी। इसीलिए समग्र एशियाई विचार धारा की पृष्ठभूमि के पीछे वह बौद्धधर्म की उस भारतीय सांस्कृतिक धारा का हाथ मानते थे जो उदारवादी थी तथा जन जातीय जीवन से भी संयुक्त हो सकती थी। इसका आकलन उन्होंने एक तरफ सीमान्तों के राज्यों का भ्रमण एवं गोम्पाओं के आवास एवं सांस्कृतिक साम्य तथा आत्मीय भाव पर किया तो दूसरी तरफ भाषा, रहन-सहन, व्यवहार तथा उनके भाव जगत को समझ कर किया। वह बौद्ध संस्कृति तथा दर्शन को जनसंस्कृति का जामा पहनाने का अनथक प्रयास करते रहे हैं। उनका विश्वास था किसी देश की सांस्कृतिक प्रेरणा में ही वे सम्बन्ध सूत्र होते हैं जिनसे उस देश या प्रदेश का आदमी शासन की दृष्टि से कटा रहने पर भी अपने को उस धरती से जोड़ता है जो उसकी आस्थाभूमि होती है। पाकिस्तान तथा चीन के आक्रमण के बाद भारत में एक अपनी सीमाओं तथा वहां के लोगों की रुचि को ध्यान में रखकर चिन्तन प्रारम्भ हुआ और ऐसे मौके पर लद्दाख और नेफा के कुछ लोगों ने विशेषकर संस्कृति से प्रभावित लोगों ने भारत के बारे में अपने सांस्कृतिक लगाव के कारण वक्तव्य दिये जिसके बाद भारत सरकार का उस सांस्कृतिक दायाद की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। एक तरफ सीमान्तों की सांस्कृतिक दृष्टि की ओर प्रो० उपाध्याय का ध्यान गया, तो दूसरी तरफ युद्ध के मौके पर शस्त्र प्रयोग के दर्शन पर भी उनका ध्यान आकृष्ट हुआ और उन्होंने ऐसे मौके के लिए गीता के दर्शन की सराहना की। वह आधुनिक मानववादी विचारों से भी प्रभावित थे तथा उस सन्दर्भ में भगवान् बुद्ध को सर्वश्रेष्ठ मानववादी चिन्तक मानते थे। वर्गवाद, जातिवाद, हिंसा, ईश्वरवाद, पुनर्जन्मवाद आदि भारतीय तथा अभारतीय विचारों का सतत चिन्तन करने वाले प्रो० उपाध्याय भारतीय संस्कृति की विविधता मूलक चिन्तन में समन्वय के साथ उच्च मूल्यों के पक्षपाती थे। ब्राह्मणों की जातीय व्यवस्था के कटु निन्दक होते हुए भी उनकी त्रिसंन्ध्या परक विद्या की उपासना की अहर्निश प्रशंसा किया करते थे। जहां कहीं भी आध्यात्मिक संस्थाओं में जाते थे उसके सांस्कृतिक सम्पर्क बिन्दु को निकाल कर भारतीय आध्यात्म की समग्रता की दृष्टि खड़ी करते थे। इसी सन्दर्भ में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी कार्यस्थली काशी को समग्रता की भूमि स्वीकार किये थे। काशी को सांस्कृतिक राजधानी का दर्जा क्यों प्राप्त है ? इसके विश्लेषण में उनका मत था कि परम्परा ने जिस उदात्तता से इस नगरी को भारत का आध्यात्ममंदिर माना है उस उदात्तता से केन्द्रीभूत दिल्ली का शासन ध्यान नहीं देता है वरना इस नगरी की विविधता का वर्तमान स्वरूप भी भारतीय एकता का विधायक बन सकता है। भारत का कोई भी पन्थ बिना काशी को केन्द्र बनाये नहीं चलता। यह दृष्टि अनादि काल से आज तक रही है। आस्तिक, नास्तिक, भूतवादी तथा आध्यात्मवादी सभी के यहाँ मंदिर हैं, पूजक हैं, उसके अनुगामी हैं, तथा मठाधीश एवं पंडित हैं।

यहां सारी आधुनिकता के बावजूद गृहशिक्षण की हजारों वर्ष पुरानी परम्परा अब भी जारी है। यह सभी में है, यह बनी रहनी चाहिए। कहीं आधुनिकता भारत की सांस्कृतिक विशेषताओं को न खत्म कर दे। संगीत, नृत्य, शास्त्र, शस्त्र, मठ, मंदिर, गिरिजाघर, मस्जिद, गुरुद्वारा, कबीर, रविदास, गरीबदास, गायत्रीपूजक, शक्तिपूजक, कृमिकुण्ड, लोलारक-कुण्ड, औघड़, ब्रह्मकुमारी, आनन्दमयी, महायानी, हीनयानी, श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानक, तेरापंथी, प्रोटेस्टेन्ट, कैथोलिक, औलिया, फकीर, बरेलवी, देवबन्दी, सर्वोदयी, मार्क्सवादी, आदि-आदि विभिन्न साम्प्रदायिक लोग चिन्तन की संस्कृति का जीवन जीते हैं। वे आदिवासी नहीं थे। चिन्तन के तहत जीवन जीने वाले आध्यात्मिक भौतिक लोग हैं। ऐसा दुनिया के किसी मुल्क में सहवास नहीं और आपस में तालमेल नहीं है। ऐसी काशी का विशेष दर्जा बनना चाहिए। इसके लिए वह यहां के प्रशासन से भी अपील किया करते थे। प्रशासन ने कभी उनकी बात सुनी भी, पर वह दिल्ली वालों के कारण अनसुनी कर देता था। वह इस प्रकार की दिल्ली की दृष्टि से दुःखी रहते थे, जो खेल, राजनीतिक फायदे की ओर उन्मुख होकर करती रहती है तथा सांस्कृतिक दृष्टि को समझने की ओर लोगों का ध्यान नहीं आकर्षित करती। जो भारत की मूल भित्ति है, आधार है। जिसकी अनेकतागत आध्यात्मिक एकता का विश्लेषण होना चाहिए। एक तरफ प्रो० उपाध्याय काशी को समग्र भारत मानते थे तो दूसरी ओर छूटे हुए सीमान्त भारत को सारनाथ का सांस्कृतिक दायाद स्वीकार करते थे। भगवान बुद्ध के विचारों के साथ संस्कृत तथा पालि का तालमेल उनकी अद्भुत सांस्कृतिक समन्वय की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दृष्टि थी। वह ६२ के पहले परमपावन दलाईलामा के आते वक्त से ही भारत की विस्मृत एवं सुरक्षित शास्त्रसंपदा की रक्षा में लग गये थे। पं० आदित्यनाथ का एवं सुरति नारायण मणि त्रिपाठी के प्रयास से वह इस में सफल रहे।

उन्होंने सीमान्तों के संस्कृतिक सर्वेक्षण का उपक्रम भी चलाया। इस सर्वेक्षण से उन जनजातीय संस्कृतियों का भी पता चला जो बौद्ध नहीं हैं, फिर भी एक नयी विद्या की जीवन दृष्टि धारण करते हैं। ऐसे जनजातियों में बौद्धधर्म के प्रवेश के लिए वह उत्प्रेरणा देते रहे हैं जब कि इनमें ईसाई प्रभाव प्रमुखतया वर्तमान है। सांस्कृतिक सामरस्य कैसे बने, इसके लिए प्रयत्नशील होने पर भी श्रमणधारा के पक्षधर थे पर किसी पर अपने विचारों को जबर्दस्ती नहीं थोपते थे। उन्होंने भारत में सीमान्तवासी बौद्धों की एकता को कायम रखने के लिए सीमान्तप्रदेशीय बौद्धमहासभा का संगठन कराया तथा उसकी सत्प्रेरणा से धर्मान्तरण की प्रवृत्ति पर रोक लगवाने का प्रयत्न किया। इस संदर्भ अरूणाचल सरकार का १३ नवम्बर १९७८ का न० ला/लेडि/ ८/७८ पी एल विधेयक द्रष्टव्य है। वह एक तरफ अरूणाचल के बौद्ध धर्म प्रभावित मोन्पा, मेम्बाज, शेरडुक्पन, खम्बा, आपातानी तथा सिम्फू जन जातियों की संस्कृति की सुरक्षा के लिये प्रयत्नशील रहे। वहीं वैष्णव प्रभावित नोष्ट्रों, आका तथा प्रकृतिपूजक दोनी पोलो वाली जन जातियों की भी संस्कृति की सुरक्षा का प्रयत्न करते रहे थे। उन्होंने भूटान के डुक्-पा तथा गुरुपद्मसंभव के धर्म की सुरक्षा का प्रयत्न किया तो सिक्किम में करमा-पा सम्प्रदाय की विशेषताओं के लिए अनेकानेक संस्थान खोलने का प्रयत्न किया।

उन्होंने बौद्ध प्रभावित जनजातीय संस्कृति तथा विश्वास के सर्वेक्षण के लिए भारत सरकार से ७ जून १९७९ को पत्र सं० फ १४-३/७९ सी०एच० (३) संस्कृतिविभाग के द्वारा लगभग एक लाख रूपये की सर्वेक्षण योजना स्वीकृत कराकर तत्तद् भागों से सांस्कृतिक धरोहर को संचित कराने का काम कराया। जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। यह सर्वेक्षण १२ जून से ३१ जुलाई ७९ तक चला।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिमालय संस्कृति सर्वेक्षण

लद्दाख से लेकर नेफा (अरूणाचल प्रदेश) तक के विस्तृत करीब ३ हजार मील लम्बे क्षेत्र में बौद्ध धर्म एवं संस्कृति के बीजों की खोज में एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण दल प्रो० उपाध्याय के निर्देशन में प्रस्थान किया। यह माना गया कि इन क्षेत्रों की गोम्पाओं (तिब्बती प्रभाव के विहारों) में हजारों पाण्डुलिपियां, थंकायें, मण्डल, स्तूप, पूजा सामग्रियां तथा मूर्तियाँ सर्वत्र उपलब्ध हैं। मध्यदेश में भी बौद्ध संस्कृति के अवशेष उपर्युक्त रूप में मिलते हैं पर वे भूमि के अन्दर हैं। इस प्रकार पूरे भारत में बौद्ध संस्कृति सुरक्षित है तथा यह भारतीय जीवन की मूलधारा की समानधर्मा है। इस सर्वेक्षण में शान्ति निकेतन, पंजाब, दिल्ली, बोधगया, तथा वाराणसी के विश्वविद्यालयों के विद्वानों ने भाग लिया। इस योजना में कार्य करने वाले २२ विद्वानों में से १३ वाराणसी के थे।

इस सांस्कृतिक सर्वेक्षण दल ने पहले तीन भूभागों को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया, क्योंकि सम्पूर्ण भूभाग का एक साथ सर्वेक्षण संभव नही था। तीनों सर्वेक्षण दलों का एक शिविर दिल्ली के गान्धी शान्ति प्रतिष्ठान में दिनाङ्क ५ जून से १२ जून १९७९ तक चला। इसका उदेश्य था सभी दलों के कार्यकर्ताओं, कार्यों में एकरूपता लाना। विभिन्न गोष्ठियों द्वारा कार्य की रूपरेखा तय की गयी। तदर्थ स्थानों की अब तक प्रकाशित विविध अनुसन्धान सामग्रियां देखी गयीं। १२ जून को सायं सभी टीमें लद्दाख, हिमाचल प्रदेश तथा अरूणाचल प्रदेश के लिए रवाना हुई।

लद्दाख के लिए रवाना होने वाले दल में स्वयं प्रो० उपाध्याय शामिल हुए। इस दल ने दुर्गम हिमालय की पहाड़ियों के मध्य में स्थित गुफाओं में उपलब्ध पाण्डु-लिपियों, थंकाओं, मण्डलों तथा पुरातत्विक अवशेषों का अध्ययन किया। कुछ परम्परागत घरों के वर्तमान सांस्कृतिक सामग्रियों का भी आंकलन किया। लद्दाख के भी नुब्रा, करगिल, एवं जंसकर का क्षेत्र नहीं देखा जा सका। केवल लेह क्षेत्र में वर्तमान १२५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मील की परिमण्डल वाली गोम्पाओं का आकलन तथा सांस्कृतिक मूल्यों का संकलन किया गया। संकलन के अनन्तर जो सामग्रियां प्राप्त हुई वे निम्नलिखित हैं।

१.	सफेद कार्ड पर पाण्डुलिपियों की आख्या	३०८७
	कार्ड के अभाव में लिखित	१९००
	फोटो ली गयी पाण्डलिपियां	५३०
२.	पीले कार्ड पर थंका एवं मूर्तियों का विवरण	७२४
	फोटो के द्वारा लिया विवरण	४५०
३.	लाल कार्ड पर पूजोपकरण का विवरण	३४४
	फोटो द्वारा अधिगृहीत विवरण	७७
४.	सामाजिक धार्मिक आदि का विश्लेषण	१२
	बातचीत के कैसेट	०८
५.	विविध	४०

सर्वेक्षण में १७ गुफाओं का तथा ४ घरों की गुफाओं की बहुत सी मूर्तियों एवं मण्डलों तथा थंकाओं का आलेख इसलिए भी संभव न हो सका क्योंकि ये सामग्रियां विशेष अवसरों पर विशेष लोगों के सांन्निध्य में सील तोड़कर खोली जाती हैं। अतः उनके ज्ञान के लिए उन विशेष अवसरों पर उपस्थित होना जरूरी होगा।

हिमाचल प्रदेश के किन्नौर लाहुल स्पिति के सर्वेक्षण में भी बहुत सी बहुमूल्य सामग्रियां प्राप्त हुई। यहां ६८ गुफाओं तथा ७ घरों का सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण में पाण्डुलिपियों का आलेख निम्नलिखित रूप में किया गया—

पाण्डुलिपियां १६०० सौ, मूर्तियां १०००, थंकाये ११२०, फोटो ग्राफ १२२५, पूजोपकरण ५०० प्राप्त हुए।

अरूणाचल प्रदेश के कामेंग, सुवनसीरि, सियांग, लोहित, तिरप जनपदों में शेरडुकपन, मोन्पा, आपातानी, आदि, खासी, तांग्सा जन जातियों का अवलोकन किया गया। यहां सम्पूर्ण जन जातियों में धर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं है जिनके पास धर्म है उनके पास लिपियां तथा धर्मग्रन्थ है इस प्रकार शेरडुक्पन, मोम्पा आदि जन-जातियों में लिपियां तथा धर्मग्रन्थ मिले। ताईखाम्ती में भी खाम्ती लिपि के ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इन जन जातियों के दो बौद्ध विहार तवांग गोम्पा तथा चोखम विहार महत्वपूर्ण रहे हैं। इनके आंकलन तथा विवरण तथा सामाजिक विश्लेषण से निम्नलिखित सामग्रियां उपलब्ध हुई।

पाण्डुलिपियां ३००, मूर्तियाँ ४३० पूजोपकरण ११०, थंकायें ४००, फोटों १००० इस प्रकार सीमान्त की जनजातीय तथा सांस्कृतिक बातों का सर्वेक्षण करके इसके गहन अध्ययन के लिए प्रो० उपाध्याय ने भारत सरकार को सुझाव दिया तथा यावज्जीवन इनकी संस्कृतियों के प्रचार-प्रसार एवं परिचय के लिए प्रयत्न करते रहे।

सांस्कृतिक त्रिविष्ट्प की ओर

बौद्ध संस्कृति तथा भारतीय संस्कृति के इस प्राचीन विरासत के मूल स्वरूप को खड़ा करने के लिए भी प्रो० उपाध्याय तब से सक्रिय बने जब १९६८ में उनको तिब्बती संस्थान, संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी के लिए सदस्य बनाया गया। वह हिंगुरानी साहब के द्वारा दिल्ली में नार्थ ब्लाक के उत्तरी बाग में श्री उदयनारायण पाण्डेय की सिफारिस पर तिब्बती संस्थान के लिए नामित किये गये तभी से उन्होंने प्राचीन अनुपलब्ध बौद्धसंस्कृति के पुनरूद्धार के लिए कार्य प्रारम्भ कर दिया। वह प्रथम बैठक में ही लद्दाख संस्थान, लद्दाख बौद्धविहार, वेलारोड, दिल्ली की छाया का प्रारूप बनवाकर साथ ले गये थे। वहां सीमान्तों के पठन-पाठन की भांति तिब्बती संस्थान का पठन-पाठन बने, एतदर्थ प्रयत्नशील रहे। तिब्बती संस्थान कभी टूटे नहीं, एतदर्थ उसमें सीमान्त के छात्र भी दाखिल किये गये। क्योंकि उनकी संस्कृति तथा भाषा सीमान्त भारतीयों की संस्कृति तथा भाषा की भांति है। वह परम पावन दलाईलामा तथा उनके द्वारा संचालित गोंफाओं के अध्ययन पद्धति से वाकिफ रहा करते थे। वह संस्कृत शास्त्रों का तिब्बती अनुवाद तंग्युर तथा कंग्युर के संकलन में उपलब्ध है इससे भी परिचित थे। फलतः तिब्बती संस्थान की स्थापना से पुरातन भारतीय संस्कृति के मानदग्रन्थ अनुवाद के द्वारा पुनः अपने देश में आ जायेंगे, एतदर्थ प्रयत्न करने लगे और परमपावन के साथ भारत सरकार में बैठकर संस्थान की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सफलता की व्यूह रचना करने लगे। उन्होंने शास्त्रों के साथ तिब्बती लोगों के स्वातंत्र्य तथा सांस्कृतिक गतिविधियों की भी चिन्ता की। फलतः वे तिब्बतियों के विभिन्न सेटिलमेन्टस में जाकर निरीक्षण करके उनकी सुविधाओं के लिए भी प्रयत्न किया। जिससे उन्होंने शरणार्थी शिविरों का आंकलन किया।

इसी प्रकार तिब्बती संस्थान को संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से सारनाथ लाकर और उसकी व्यापक संरचना में योग दिलाकर उन्होंने सांस्कृतिक दृष्टि को पनपाने या बढ़ाने में योगदान किया है। तिब्बती संस्थान में जो विविध परिचर्यायें हुई तथा जो प्रकाशन हुए उनमें भी प्रो० उपाध्याय का योगदान है। यह अन्य बात है कि प्रो० एस. रिम्पोछे ने प्रो० उपाध्याय के सहयोग को स्वीकार किया जिसके फलस्वरूप निम्नलिखित कार्य सफल हो सके पर दुःख की बात है कि अब उस योगदान को भुलाया जा रहा है। मुझको याद है कि जब डा० प्रतापचन्द्र बंगाल के शिक्षामंत्री हुए तो उन्होंने प्रो० रिम्पोछे के ऊपर प्रो० गौरीनाथ शास्त्री को निदेशक नियुक्त कर दिया जबकि डा० गौरीनाथ शास्त्री तिब्बती संस्थान के प्रति आग्रहशील थे परन्तु डॉ कपिला वात्स्यायन और प्रो० उपाध्याय ने मिलकर तिब्बती संस्थान को अवमूल्यित होने से बचाने में पारस्परिक सहयोग किया फलतः जनता सरकार का अपने स्वार्थवादी मूल्यों के कारण पतन हुआ और फिर डा० गौरीनाथ शास्त्री की नियुक्ति ज्यों की त्यों रह गयी। इस प्रकार तिब्बती संस्थान बच गया। संस्कृतिविद् लोगों के द्वारा संचालित संस्थान तभी तक कामयाब होते हैं जब तक उन लोगों का सरकार एवं निदेशालय में वर्चस्व रहता है पर राजनीति बदलते ही सांस्कृतिक संस्थानों का अवमूल्यन होने लगता है। वर्तमान सन्दर्भ में भी यही बात लागू होती है।

श्रमण विद्या संकाय का गठन

प्रो० उपाध्याय ने जिस प्रकार सीमान्त बौद्ध, तिब्बती बौद्धधर्म दर्शन एवं संस्कृति लिए काम किया। उसी प्रकार संस्कृति की दृष्टि से श्रमण विद्या तथा तन्त्र संस्कृति का भी कार्य किया। इसका मिशाल हमको सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कार्यकलापों में दिखाई देता है। वह विश्वविद्यालय के प्रारम्भ काल से ही यहां नियुक्त थे। यहां तक कि परमपावन के ल्हासा के पलायन से ही बौद्ध संस्कृति की रक्षा हेतु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाराणसी में व्यवस्था बनाना प्रारम्भ किया। उनसे सम्बन्धित भारतीय विद्या संस्कृति तथा संस्कृत प्रमाणपत्रीय विभाग के रूप में अन्तराष्ट्रिय संस्कृत विभाग बना जिसमें सीमान्तों के तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों से छात्र आकर बौद्ध दर्शन का अध्ययन करने लगे। इस प्रकार बौद्ध धर्म दर्शन का परम्परागत ढंग से अध्ययन-अध्यापन प्रारम्भ हुआ। तदर्थ विभिन्न विभागों का सृजन भी संभव हुआ। सम्प्रति भी वे विभाग चल रहे हैं पर उनकी प्रगति पूर्वापेक्षया न्यून है फिर भी निम्नलिखित विभाग श्रमण संस्कृति के विकासार्थ काम कर रहे हैं।

१. बौद्धदर्शन विभाग

२. पालि एवं थेरवाद विभाग

३. जैनदर्शन विभाग

४. जैनागम तथा प्राकृतविभाग

५. संस्कृत-संस्कृति विभाग (जो पहले संस्कृत प्रमाणपत्रीय विभाग के नाम से चलता था।)

प्रो० उपाध्याय की विशेषता थी कि वह पारम्परिक सम्बन्धों को व्यापक बनाने वाले कार्यों को महत्त्व देते थे। फलतः संस्कृत विश्वविद्यालय में एक ऐतिहासिक तन्त्र सम्मेलन कराने में समर्थ हो सके। तन्त्र सम्मेलन के संयोजक के रूप मे वे विरले संयोजक माने जायेंगे। जिसमें तत्कालीन उत्तर प्रदेश के राज्यपाल विश्वनाथ दास तथा बिहार के राज्यपाल अनन्तशयन-मायंगार ने करीब तीन दिनों तक संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में डेरा डाले रखा। श्री सुरतिनाराममणि त्रिपाठी, म.म.पं. गोपीनाथ कविराज के साथ प्रो० उपाध्याय ने इस सम्मेलन को सफल बनाने का भरसक प्रयत्न किया पर तन्त्रप्रदर्शनी, पूजनसामग्री तथा प्रदर्शनी के अन्य विभिन्न चार्ट जो तब लाखों रूपयों के व्यय से बने थे। आज रखरखाव के अभाव में समाप्त हो गये हैं। अब तो सरकारें तथा उनके द्वारा नियुक्त कुलपति इन सब सांस्कृतिक चीजों की ओर ध्यान भी नहीं देते हैं। प्रो० उपाध्याय ने तन्त्र सम्मेलन के विषयों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का सारस्वती सुषमा में प्रकाशन कराया, मात्र उतनी ही सम्पत्ति उपलब्ध है। शेष कहां गया इसका लेखा-जोखा भी प्राप्त नहीं है। सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय में उन्होंने दर्शन परिषद् तथा अन्तराष्ट्रिय एशियाई भातृ परिषद् आदि की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुरूआत करके स्तुत्य कार्य किया, उसकी परम्परा चलनी चाहिए।

दलितों में बौद्ध संस्कृति का प्रसार

प्रो० उपाध्याय के कार्यों में दलितों में बौद्ध संस्कृति के प्रसार का कार्य भी महत्वपूर्ण है। इसकी जानकारी कम लोगों को है, पर उसका एक संक्षिप्त रूप यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रो० उपाध्याय ने सीमान्तों के लोगों को भारतीय संस्कृति की मूल धारा में लाने के लिए सीमान्तों में लेह स्कूल आफ फिलासफी, लद्दाख इन्स्टीच्यूट आफ हायर स्टडीज तथा ञिङ्मा इन्स्टीट्यूट आफ सिक्किम आदि की स्थापना में सहयोग देकर राष्ट्रीय कार्य को सम्पन्न कराया। इसी प्रकार भारत के दलितों में जो डा० अम्बेडकर के द्वारा आन्दोलन खड़ा हुआ। उसको सांस्कृतिक बनाने के लिए कार्य किया। उन्होंने तदर्थ महाराष्ट्र, दिल्ली, गुजरात, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश का दौरा करके दलितों में बौद्ध संस्कृति की दीक्षा तथा विशेषताओं का बोध कराया। उन्होंने लद्दाख बौद्ध विहार में गोष्ठी करके डा० अम्बेडकर के बौद्ध आन्दोलन की भावी दिशा का स्वरूप आंकलित कराया। दलित जातियां कैसे अपने को हीन समझती हैं, और उनमें कैसे सांस्कृतिक मूल्य के साथ आत्म सम्मान का भाव जगे, एतदर्थ कार्य किया। उन्होंने ९ अक्टूबर १९७४ में एक गोष्ठी का आयोजन कराया। इसमें बौद्ध विचारकों के अलावा तत्कालीन छात्रा सुश्री मायावती (पूर्व मुख्यमंत्री उ०प्र०) को भी बौद्ध आन्दोलन की दिशा से परिचित कराया। यह तदर्थ लिखित रिपोर्टों से ज्ञात है —

“ ९ नवम्बर १९७४ को अपरान्ह में २.३० बजे दो बैठकों में डाउन 'ट्राडेन इमैसीपेसन सोसाइटी' के तत्वावधान में आमंत्रित लद्दाख बौद्ध विहार वेलारोड दिल्ली में बौद्ध विचारों की गोष्ठी सम्पन्न हुई। इसकी अध्यक्षता वाराणसी के पालि-विभाग, संस्कृत विश्वविद्यालय, के अध्यक्ष प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय ने की। इसमें डॉ० अम्बेडकर के बौद्ध आन्दोलन की भावी दिशा पर विचार-विमर्श किया गया। इसको चार खण्डों में विभक्त किया गया।

१. धार्मिक प्रशिक्षण और निष्ठा का विकास

२. धर्मनीति और दलित राजनीति का सम्बन्ध

३. बौद्ध आन्दोलन और दलितों की समस्याओं का विवेचन।

RajGuru Math, Shivala, Varaṇasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४. बौद्ध संगठन और योजना।

इस गोष्ठी में जिन लोगों ने भाग लिया उनमें प्रमुख थे भिक्षु विशुद्धानन्द, भिक्षु शिवली बोधि, श्रीराजाराम अरविन्द, श्रीनानकचन्द्र, श्रीरामनाथ सुमन, श्री मुलहू राम, श्री एन. जी. उक्के, श्री बाबूराम पाखिड़े, श्री किसनलाल केन, श्री शान्ति स्वरूप शान्त, श्री वतन स्वरूप राहुल, सुश्री मायावती, श्री सिद्ध गोपाल सागर, श्री पीताम्बर सिंह, श्री एस. एफ. जोशिया एवं श्री राधेश्यामधर द्विवेदी।

इस गोष्ठी में विचारित विषयों पर एक विस्तृत विश्वसनीय संगोष्ठी लद्दाख बौद्ध विहार - बेलारोड के परिसर में आयोजित हुई। जिसका पूर्ण विवरण लामा लोब्जं महामंत्री लद्दाख बौद्ध विहार ने प्रकाशित कराया है। सम्प्रति लामा लोब्जंग अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग, केन्द्र सरकार के सदस्य हैं, तथा इसके पूर्व वह अल्पसंख्यक आयोग भारत सरकार के भी सदस्य रह चुके हैं। इसको बौद्ध आन्दोलन की भावी दिशा' नाम से १९७५ में प्रकाशित किया गया था तथा इसमें १. बौद्ध आन्दोलन की क्रान्तिकारी दिशा -जगन्नाथ उपाध्याय २. भारत में डा० अम्बेडकर के बौद्ध आन्दोलन की भावीदिशा-एस. विमलकीर्ति ३. भारत में बौद्ध आन्दोलन-डा० पी.टी. वोराले ४. भारतीय आन्दोलन की पृष्ट भूमि-रमेशचन्द्र तिवारी ५. डॉ० अम्बेडकर के बौद्ध आन्दोलन की दिशा-भिक्षु शिवली बोधि के निबन्धों पर तीन दिनों तक विश्लेषण एवं विवेचना चलती रही, उनका विवरण छपा है।

सांस्कृतिक समन्वय

वह दक्षिण भारत में मंदिरों, पूजा पद्धतियों के जितने प्रेमी थे उतने ही विविध आयामों वाली भारतीय जनता के बीच रहकर विविधता की भारतीय संस्कृति का बोध करते थे। केरल के क्रिश्चियन सम्प्रदायों के बीच बैठकर एक तरफ कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट के भेदोपभेदों में एकता के पक्षपाती थे तो दूसरी तरफ केरल के आर्थोडाक्स क्रिश्चियनों के गंभीर प्रशंसक थे। वहीं महाराष्ट्र में महारों के बौद्ध होने की गतिविधियों के प्रशंसक तथा उत्प्रेरक थे। वैसे ही शिवगिरि में ओझवायों के नायक स्वा० शिवनारायण गुरु के आश्रम का प्रसाद पाकर भी प्रसन्न रहते थे। वह शिवनारायण गुरु में बौद्ध तथा वैदिक पन्थ का समन्वय पाते थे। यह भी उनको रुचिकर लगता था। उनके मठों, देवालयों तथा गतिविधियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में काफी रूचि रखते थे। जैसे हिंमालयीय लामाओं में विशेषकर लद्दाख के कुशोकबकुल, लामालोब्जंग, हिमाचल के लामा नेगीलामा, गेशे पलदन सेङ्गे, नेपाल के भिक्षु अमृतानद वज्राचार्य, सिक्किम, अरूणाचल के लामा छेवाङ नोरबू तथा श्री पी०के० थुगोंन आदि से सम्बन्धित रहकर उत्तर हिमालीय गतिविधियों का लेखा रखते थें तथा सांस्कृतिक दृष्टि की ओर ध्यान आकृष्ट करते थे। वैसे दक्षिण भारत के ब्राह्मणवासियों अर्थात वाल्टेयर के प्रो० के० सच्चिदानन्द मूर्ति, बैंगलूर के पं० कृष्णाचार्य शास्त्री, शिवगिरि के पणिक्कर आदि से भी सम्बन्धित रखकर भारतीयता की साहित्यवृत्ति की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते थे। इतना ही नहीं श्रीलंका के भिक्षुओं से विशेष रूप से भदन्त सोमरतन, भदन्त दाबुलदेण ज्ञानेश्वर आदि की भी संस्कृत तथा पालि की सांस्कृतिक गतिविधियों में समवेत आस्था रखते थे।

दूसरी ओर वह भारत की सांस्कृतिक राजधानी वाराणसी में १९८७ में पारस्परिक सद्भाव के लिए संस्कृत विश्वविद्यालय से गुरु बाग के गुरुद्वारा तक प्रातः काल में बुद्धयन्ती के वक्त शान्ति यात्रा का आयोजन कर वाराणसी से सबको शान्ति पथ का सीख देना चाहते थे। उन्होंने भगवान् बुद्ध को समग्र भारत को एकता में बांधने का चमत्कारिक व्यक्तित्व माना था तथा कहा था— भगवान् बुद्ध का धर्म विभिन्न देशों में गया पर वहां की जनजातीय पद्धति में बिना अड़ंगा डाले अपने उदात्त विचारों के आधार पर वहां वह पूजित हुआ। तिब्बत में बोन् लोगों के साथ, चीन में कन्फ्यूसस् तथा ताओ के साथ, जापान में सिन्तों के साथ जुटने वाला बौद्धधर्म समन्वयवादी है तथा लोकहितकारी है। जब तक भारत में मैदानी इलाकों में बौद्धधर्म था तब तक यहां की विदेशी घूमंतु, जातियाँ तथा आक्रामक भारतीयता के मूल स्रोत में घच-पच गये। पर उसके प्रवासी बनते ही यहां सामरस्य की वह शक्ति गायब हो गयी। जिसने कुषाण, शक, हूण तथा अन्यों को अपने में समाहित किया था। वाराणसी में विचारशक्ति यद्यपि एक को पृथक् -पृथक् रूप में रहने की प्रेरणा देती है। पर आचार के विभेद से सम्प्रति भारत खण्डित तथा विभाजित लग रहा है और उसकी सांस्कृतिक एकता का मूल रूप नहीं बन रहा है, उस ओर ध्यान देना चाहिए। वाराणसी को विभिन्न विचारों का मानक स्थल मानकर विकसित किया जाना चाहिए। और सांस्कृतिक सम्बन्ध का स्वरूप दिया जाना चाहिए। अतः मैत्रीयात्रा से भारत की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पारम्परिक विरासत तथा सामञ्जस्य एवं बंधुत्व का विकास होगा। इस मैत्री यात्रा के पत्रक में जिन संगटनों एवं लोगों ने भाग लिया यह प्रो० उपाध्याय के कुशल नेतृत्व की देन है। उन्होंने इस यात्रा हेतु निवेदन का स्वरूप लिखते हुए कहा—

बुद्ध जयन्ती के अवसर पर 'मैत्री-यात्रा'

२३ मई शुक्रवार, १९८६ को प्रातः ५ बजे

प्रारम्भ स्थल सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

हिन्दुस्तान के इतिहास में भगवान् बुद्ध प्रथम महापुरुष हैं, जिन्होंने आज से हजार वर्ष (२५३०) पहले जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रीयता और धर्मों एवं सम्प्रदायों द्वारा स्वीकृत हिंसा की मान्यताओं के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द की थी। उन्होंने इन सभी क्षुद्र मान्यताओं का कारण मनुष्य का अज्ञान और उसके हीन स्वार्थ को बताया है, जिसके पीछे उसकी तृष्णा काम करती है। उन्होंने सारी मानव-जाति को सम्बोधित कर कहा कि सृष्टि में मनुष्य से श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। वह स्वयं अपना और अपने संसार का भाग्य-विधाता है। दुनिया के अच्छा बुरा होने के पीछे एकमात्र कारण मनुष्य की ही अच्छाई या बुराई है। मनुष्य अपने दुःखों का कारण स्वयं है। उन दुःखों से मनुष्य का छुटकारा न तो कोई दूसरा करा सकता है और न उसके लिये मार्ग ही खोल सकता है। इसके लिये मनुष्य को खुद अपने को रोशनी बनानी पड़ेगी और अपने ही प्रकाश में चलना पड़ेगा। बुद्ध ने बताया मानव-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है—मनुष्यों को भीतर बाहर सभी प्रकार के दुःखों से छुटकारा दिलाना। इस महान् लक्ष्य को स्वीकार करने के साथ ही मनुष्य के लिये यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि वह समस्त प्राणियों में अपरिमित मैत्री का विस्तार करे। बुद्ध ने कहा— जैसे माता अपने इकलौते पुत्र की रक्षा के लिये अपने जान की परवाह नहीं करती, उसी प्रकार मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा के लिये उनके प्रति सीमा-रहित मैत्री-भावना का विस्तार करे। उन्होंने सम्पूर्ण मानवजाति से अपील की—सारी मानुषी प्रजा से मैत्री स्थापित करो।

बुद्ध ने मनुष्यों के हित के लिये धर्मों की भी सीमा बताई। धर्मों के सम्बन्ध में बुद्ध ने कहा—धर्म सिर पर ढोने के लिये नहीं है। यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बांस के बने उस बेड़े के समान है, जिसके सहारे असहाय आदमी नदी पार कर जाता है, किन्तु बेड़े को वहीं, छोड़ देता है। बुद्ध ने कहा कि अधर्म को छोड़ना है, इसमें कोई विवाद नहीं है, किन्तु अधर्म के समान धर्म को भी छोड़ना होगा, जब वह मानव-हित का विरोधी हो जाय। उन्होंने कहा—क्या धर्म है ? क्या अधर्म है ? इसके निर्णय के लिये किसी शास्त्र पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि मैंने जो भी कुछ बताया है, उसकी भी पूरी परीक्षा कर लो, तभी उसे मानो।

कौन सा मनुष्य श्रेष्ठ है ? इसे बताते हुए बुद्ध ने कहा—किसी की श्रेष्ठता का निर्णय उसकी जाति, वंश और गोत्र आदि से नहीं हो सकता। जाति वर्ण या गोत्र आदि वास्तव में होते ही नहीं। उन्होंने लोगों से कहा कि यह उचित नहीं है कि किसी की जाति पूछा करो, बल्कि उसकी जगह उसका आचरण पूछो और उसे देखो।

इसी प्रकार उन्होंने कहा कि कोई भी भाषा पवित्र या श्रेष्ठ नहीं होती। जहाँ मानव के लिए कल्याणकारी बातें हो, वही श्रेष्ठ और ग्राह्य भाषा है। उन्होंने जोर देकर कहा—शब्दों (शास्त्रों) की शरण में न जाओ, उसके अर्थ को देखो और उस अर्थ की ही शरण में जाओ।

ऊपर का वक्तव्य यद्यपि महामानव बुद्ध के सन्दर्भ में लिखा गया है। किन्तु वास्तव में यही सभी धर्मों का हृदय है। धर्म जब साम्प्रदायिक मान्यताओं से घिर जाते हैं, तो वे व्यापक मानव हित के मार्ग से च्युत होने लगते हैं। इस स्थिति में यह आवश्यक है कि धर्म को साम्प्रदायिकता के प्रभाव से निकाला जाए और विशुद्ध धर्म के प्रकाश में मानव को उजागर किया जाए। इसका आरम्भ करने के लिए आवश्यक है कि सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र, वर्ग आदि की सीमाओं से ऊपर उठ कर सभी मनुष्यों में मैत्री-भावना जगाई जाए। यह परिवर्तन का पहला कदम होगा। इसी की पृष्टभूमि में हम समता, एकता और अखण्डता को स्थापित करने का सफल प्रयास कर सकेंगे।

आईये, उक्त संकल्प से प्रेरित होकर २३ मई शुक्रवार १९८६ को बुद्ध जयन्ती के अवसर पर मैत्री यात्रा का प्रारम्भ करें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निवेदक

राजाराम शास्त्री	जगन्नाथ उपाध्याय	आनन्देश्वर सिंह
रघुनाथ गिरि	कृष्णबहादुर	रमेशचन्द्र तिवारी
रिजवानुल्ला शास्त्री	राधेश्यामधर द्विवेदी	श्यामाप्रसादशुक्ल
लक्ष्मीशंकर व्यास	बच्चन सिंह	रामशंकर त्रिपाठी
फादर राक	कुं० चन्द्रकान्ता	पूरनचन्द पाठक
अजित सिंह सब्बरवाल	मीरा द्विवेदी	योगेन्दर सिंह बग्गा
सागर सिहं एडवोकेट	काजिम रिजवी	श्यामदास शास्त्री
सोमनाथ	टी०आर०अनन्तरमन	शरद कुमार साधक
भिक्षु डी० रेवत	नागेश्वर प्रसाद	रामचन्द्र राही
दीपक मल्लिक	आनन्द कुमार	सत्येन्द्र त्रिपाठी
गंगाशरण शास्त्री	भिक्षु प्रज्ञादीप	बनवारीलाल
कैलाशनाथ सिंह	अब्दुल बहीद	श्रीमती शेलीसहाय
कमरजहाँ	ताहिरअली एडवोकेट	डॉ० टशी पलजोर

कार्यक्रम

१. मैत्रीयात्रा: संस्कृत विश्वविद्यालय के समाने से यात्रा प्रारम्भ, लहुराबीर, कबीरचौरा (कबीर कीर्ति मन्दिर तथा कबीर मठ होते हुए) मैदागिन (दिगम्बर जैन मन्दिर होते), नीचीबाग (गुरुद्वारा होते), चौक, ज्ञानवापी, गोदौलिया (चर्च से रामापुरा जयनारायण स्कूल होते), रेवड़ीतालाब (मरकजी दारूल उलूंम-जामिया सल्फिया होते) कमच्छा, गुरुबाग तक।

२. समापन स्थल :- **गुरुबाग में सभा: सभापति—श्री देवेन्दर सिंह बग्गा (आयुक्त, वाराणसी)।**

इस सभा में प्रो० उपाध्याय ने अपने जीवन के अन्तिम काल में सामाजिक सामरस्य तथा मानव एकता स्थापित करना चाहते थे। उसका विवरण मैत्री यात्रा के विविध घटकों के संचयन से ज्ञात होता है। उनका यह अधूरा कार्य यदि पूरा हो जाय तो आज के भारत की सम्पूर्ण समस्या का समाधान हो जाय। प्रो० उपाध्याय के अनुयायिकों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सांस्कृतिक संकट के बीच पालि प्राकृत भाषाओं की समस्या

भारतीयता के लिए सांस्कृतिक संकट यह है कि उसके विराट् स्वरूप को, जिसे सहस्राब्दियों में विद्या, त्याग और तपस्या के बल पर उसने उपार्जित किया था, या तो छिपाया जाता है या उसे विकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है। एक ओर भारतीय धरती का यह सौभाग्य रहा है कि प्राक्-इतिहासकाल से ही लगातार दर्जनों मानववंशी समूहों और सैकड़ों विशिष्ट जातियों ने इसे अपनी मातृभूमि बनाया और अपने-अपने धर्म, दर्शन, संस्कृति, कला एवं आध्यात्मिक तत्त्वचेतना से इसे ऐसा सुसमृद्ध किया, जिससे यह संभावना जाग उठी कि इस देश के द्वारा मानव जाति को एक विश्व-मानव-संस्कृति का अवदान प्राप्त हो सकेगा। उसी क्रम में दूसरी ओर दुर्भाग्य यह है कि इसकी विराट् सांस्कृतिक चेतना को उभरने न देने के लिए अनेक दुरभिसंधिपूर्ण चेष्टायें की गई। इस देश के अपमानपूर्ण इतिहास-खण्ड के प्रति इस प्रकार की अनवरत चेष्टा ही उत्तरदायी है। अपनी सांस्कृतिक यात्रा के आदि काल में ही यह मंगल कामना की गई थी कि यहां से सारे विश्व में श्रेष्ठता का प्रसार होगा।

उस समय मनीषियों का यह उद्गार था कि जो 'भूमा है, वही सुख है, जो अल्पता है वही मृत्यु है'। हिमालय, सिन्धु और गंगा की उपत्यका से उठने वाले इस मानवीय जयघोष को जिस महाप्रसाद ने अपने अहंकार के प्रचण्ड कोलाहल में अनसुना कर दिया और जिस हृदय-दौर्बल्य की प्रचण्डता ने इस देश की विराट् आत्मा को क्षुद्रता का अभ्यास कराया। आज भी हमारे सामाजिक अभ्यास, उसके स्वभाव और शक्ति-संघात पर इस प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस बड़े देश में यह जितना फैला हुआ है, उतना गहरा भी है, इसलिए इस ऐतिहासिक अवसाद के पुंखानुपंख विश्लेषण के बिना भारतीय जीवन में स्थित गहरे अवसाद का निदान नहीं किया जा सकता और न उसका उपचार। इसकी खोज में प्राचीन भारतीय साहित्य के साक्ष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तुत हैं, विशेषकर प्राकृत-पालि आदि के आगमों के विशाल साहित्य में। इस साहित्य की उपेक्षा के ऐतिहासिक कारण भी इन प्राचीन साहित्यों में उभर कर आये हैं।

भारतीय विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं में धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं इतिहास से संबधित किसी विषय पर शोध या विशिष्ट अध्ययन का कार्य किया जाता है तो उसका गन्तव्य एवं उद्देश्य है। महाभारत, धर्मसूत्र, स्मृतियाँ, पुराण तक। उसी से संबंधित काव्य एवं षद्दर्शन के विमर्श के साथ। इतने से अध्ययन पूर्ण समझ लिया जाता है। भारतीय संस्कृति तथा भारतीय तीर्थ विद्याओं के अध्ययन का यही अर्थ एवं 'इति' मान ली जाती है। वास्तव में भाषा एवं विषय की दृष्टि से संस्कृति की यह एक संकीर्ण विधि है, जिसे भारतीय संस्कृति के अध्ययन का राजमार्ग बताया जाता है। इस प्रसंग में भारतीय भाषाओं का इतिहास तथा उसके भाषा-वैज्ञानिक निष्कर्षों को या तो आंखों से ओझल कर दिया जाता है या उसे भी अन्यथा रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वैदिक भाषा के संयोजन के पीछे तत्कालीन जन-भाषाओं के अवदान की चर्चा हम यहां न भी करें, तो भी हमारा ध्यान इस ओर अवश्य आकृष्ट रहना चाहिए कि वैदिक भाषा का आधुनिक भारतीय भाषाओं के साथ नैरन्तर्य कैसे जोड़ा जाय। इस गहरे अन्तराल को मात्र संस्कृत से जोड़ने की चेष्टा की जाती है।

यह ठीक है कि संस्कृत का जीवन दीर्घकालीन है, किन्तु वह जीवन कभी भारतीय जन-जीवन का प्रतिनिधि नहीं था, यह भी छिपा नहीं है। समाज के अल्पसंख्यकों का, उसमें भी वर्गविशेष का ही जीवन प्रतिफलित हुआ। फलतः संस्कृत ने न तो जन-जीवन एवं जने-भाषा से स्वयं प्रेरणा प्राप्त की और न अपनी विशिष्टता से जनजीवन का स्पर्श ही किया। यही कारण है कि संस्कृत कभी सहज नहीं बन सकी। अपनी कृत्रिमता के बल पर वह 'देववाणी' बनने के प्रयास में लगी रही। इस पर भी ध्यान देने की बात है कि देववाणी बनाने का प्रयास किया गया, 'देवीवाणी' का नहीं। संस्कृत की इस विरोधी पृष्टभूमि में विज्ञजनों द्वारा यह निष्कर्ष निकालना और उसे प्रसारित करना कितना हास्यप्रद, अस्वाभाविक एवं अवैज्ञानिक है कि १—संस्कृत ही भारतीय संस्कृति है और २—वर्तमान भारतीय भाषाएं संस्कृत से ही उत्पन्न हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उक्त प्रकार की अवधारणा पर ही भारतीयता की समग्रता की न उभरने देने का प्रमुख उत्तरदायित्व है। संस्कृत ही यदि भारतीय संस्कृति है, तो हम भारतीयता को कितना खण्डित एवं आंशिक रूप देते हैं, इसकी ओर ध्यान नहीं जाता । भाषा का संस्कृति के साथ क्या संबंध है और सहज रूप में वह कैसे विकसित होती है, इसकी ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए। वैदिक छान्दस् के बाद एक भाषा 'संस्कृत' 'लौकिक संस्कृत' या 'भाषा' के नाम से बनाई गई। प्रारंभ में अनेकानेक जनभाषाओं का इसमें योगदान था। उसी के आधार पर कृत्रिमता से बोझिल एवं जटिल, नियमों से आबद्ध एक भाषा बनी जो संस्कृत थी। इस भाषा को छान्दस् के बाद ही संयोजित किया गया, जो जनभाषाओं के समानान्तर खड़ी हुई। और वह एक छोटे वर्ग की सांस्कृतिक भाषा थी। इसके विकास के पीछे जन-भाषाओं एवं जनजीवन से पृथक् रहने की सांस्कृतिक प्रेरणा थी। भाषाविदों से यह तथ्य छिपा नहीं है कि जो भाषा साहित्यिक बनती है, उसकी सामान्य प्रवृत्ति जनभाषा एवं जन-जीवन से दूर रहने के रूप में उभरती है। अल्पसंख्यक अभिजात-वर्ग की भाषा होने से संस्कृत में यह प्रवृत्ति अधिक उग्र थी। संस्कृति के साथ भाषा का तादात्म्य संबंध या किसी प्रकार का अनिवार्य संबंध नहीं रहता है, किन्तु संस्कृति का सर्वाधिक शक्तिमान् संप्रेषक माध्यम भाषा ही है, इसमें भी विवाद नहीं है। वर्णों, जातियों की उच्चता-नीचता रोपना और श्रम का अवमूल्यन, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज एवं जनजातियों के अधिकारों का हनन आदि जिस समाज-रचना का आधार बन गया है, उसके आचार-विचार की कालव्यापी परंपरा को यदि 'संस्कृति' नाम देना है तो उस अर्थ में संस्कृत अवश्य संस्कृति की प्रतिनिधि भाषा है। इस स्थिति में संस्कृत आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है, इसका अभिप्राय सिर्फ इतना ही हो सकता है कि स्वतः एवं सहज प्रवहमान जनभाषाओं को उनके स्वभाव से च्युत कर उनका संस्कृतीकरण करने की प्रवृति आज भी संस्कृत में बनी हुई है।

ऊपर संस्कृत के संबंध में जो कुछ कहा गया है, उसका उद्देश्य उसका अवमूल्यन करना है। फिर उसके प्रसंग से विभिन्न काल के उन जन-भाषा-समूहों एवं जन-संस्कृतियों का महत्त्वांकन उद्देश्य है, जिनका प्रतिनिधित्व भाषा की दृष्टि से पालियों (मागधी) प्राकृतों (अर्द्ध मागधी) और अपभ्रंशों द्वारा हुआ है। साथ ही इसका निर्धारण भी आवश्यक है कि भाषा की वे कौन सी स्वगत प्रवृत्तियां हैं और संस्कृति के वे कौन से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्त्व हैं जो उसे लोक-जीवन से विमुख करने लगते है ? देखा गया है कि अलौकिक होने से इन प्रवृत्तियों ने एक सीमा के बाद पालि, प्राकृत और अपभ्रंशों को भी प्रभावित किया है। इस स्थिति में विचार करना होगा कि क्या भाषा और संस्कृतियों की जन-जीवन से दूर होना नियति है जिसे कायम रखा जा सके ? इसके विश्लेषण के आधार पर ही हम इसके निर्धारण में भी सक्षम होंगे कि जन भाषाओं, उनकी प्रतिनिधि भाषाओं तथा उनके द्वारा प्रकाशित जीवन और दर्शन की समस्याएं क्या हैं और उनकी सहज एवं स्वाभाविक प्रगति कहाँ और क्यों अवरुद्ध होती हैं।

वैदिक छान्दस् भाषा से आधुनिक भारतीय भाषाओं को जोड़नेवाली भाषा-परंपरा है प्राकृत, जिसने अपनी सहज स्वभाव एवं निरंतर विकसनशील गति के कारण विभिन्न पालियों, प्राकृतों और अपभ्रंशों के नाम से १७०० वर्षों से अधिक आयु को शिलालेखों, आगमों, नाटक, काव्य एवं विभिन्न साहित्यों में पूर्ण वैभव के साथ सुरक्षित रखा। इस संबंध में इन तथ्यों पर विशेष ध्यान रहना चाहिए कि प्राकृतों का उद्भव संस्कृत से नहीं, उसके समानान्तर अपने पूर्व-पूर्व स्वतंत्र स्रोत से चलकर उत्तरोत्तर कालों में विस्तृत एवं गंभीर होती चली गई। इतना ही नहीं, उसके द्वारा प्रकाशित जीवन-दर्शन सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताएं, ऐतिहासिक उपलब्धियां, संस्कृत की प्रमुख विचारधारा ब्राह्मणवाद से नितांत भिन्न थीं। यही कारण है कि इतिहास के प्रारंभकाल से ही भारतीय साहित्यों में श्रमण एवं ब्राह्मण तत्त्वों द्वारा भेद किया जाता है तो उसका संदर्भ सांस्कृतिक होता है, जातीय नहीं। क्योंकि जाति की दृष्टि से श्रमणों में भी ब्राह्मण पर्याप्त मात्रा में रहे हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण-संस्कृति में ब्राह्मणेतर भी मिलते हैं। इस प्रसंग में कुछ लोग इतिहास की भ्रांति-पूर्ण व्याख्या करना चाहते है कि श्रमण संस्कृति ब्राह्मणवाद की प्रतिक्रिया में उद्गत हुई या कि ब्राह्मण धारा के अन्तर्गत ही यह एक उत्क्रांति थी, जिसका उद्देश्य ब्राह्मण परंपरा में उदार संशोधन मात्र लाना था, जबकि ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध श्रमणों की प्राचीनतम परंपरा को अंन्यथा नहीं किया जा सकता। इस संबंध का प्राग् ऐतिहासिक विवाद यहां प्रासंगिक नहीं होगा। अच्छा यही होगा कि प्राकृतों के इतिहासकालिक उद्गम और विकास द्वारा प्रतिफलित निष्कर्षों के आधार पर ही वास्तविकता का आंकलन किया जाय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विदित है कि श्रमण परंपरा अनेक भागों में विभक्त थी, किन्तु ईसापूर्व पांच छः सौ वर्षों के मध्य उसके दो सशक्त आन्दोलन खड़े हुए, जिसके महान् नायक थे भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध। यह आन्दोलन युगान्तकारी उत्क्रांतिवादी आर्यों के मध्य में ही खड़ी हुई, जिसने अपनी प्रेरणाएं श्रमण-परंपरा से प्राप्त कीं। और समसामयिक वैदिक जीवन-दर्शन एवं उसकी सामाजिक व्यवस्था को मानव-हित का विरोधी समझकर मानव-श्रेष्ठता-प्रधान वर्गों का उपदेश किया। दोनों श्रमण-परंपराओं में परस्पर मत-वैचित्र्य होते हुए भी अनेकानेक ऐसी समान मान्यताएं थीं, जिनसे श्रमणों की विशिष्टता तथा ब्राह्मणवादी परंपरा से उसका मौलिक भेद एवं विरोध स्पष्ट हुआ।

श्रमणों ने देव-श्रेष्ठता और ईश्वरवाद का विरोध करके मानव-श्रेष्ठता के सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया। ब्राह्मण एवं राजन्यों के अन्तहीन साम्राज्यवादी आयाम को धार्मिक आवरण में सुरक्षित करने के प्रधान उद्देश्य से प्रस्थापित यज्ञीय कर्मकाण्ड का विरोध कर श्रमणों ने उसे आध्यात्मिक साधनाओं की दशा प्रदान की। यज्ञ को केन्द्र बनाकर उसके चतुर्दिक् एक ऐसी संस्कृति का प्रभामण्डल खड़ा होता था, जिसमें जन्म से उत्कृष्ट समझा जाने वाला वर्ग सब प्रकार से लाभान्वित हो और इतर लोक वंचित रहे। सिर्फ पशु-हिंसा के ही कारण श्रमणों ने यज्ञ का विरोध किया। यह कहना मानव प्रजा के शोषण विरोधी इस ऐतिहासिक आन्दोलन को हल्का बनाना है। सत्य यह है कि श्रौत-याग साम्राज्यवादी शोषण का धार्मिक मंच था। इसी दृष्टि से इतिहास की तथ्यात्मक व्याख्या होनी चाहिए। इसी संदर्भ में श्रमणों के गणतन्त्रों के प्रति पक्षपात को भी ग्रहण करना चाहिए।

शब्दों की नित्यता, उसकी सर्वोच्च पवित्रता और अकाट्य प्रामाण्य की जगह श्रमणों ने अर्थ की पवित्रता के सिद्धांत को मुखरित किया। शब्द को उन्होंने केवल अर्थ-संप्रेषण के लिए माध्यम मात्र स्वीकार किया। मानव-हित श्रमणों का आदर्श था, इसलिए उन्होंने छान्दस् भाषा का निषेध करके अपने उपदेशों का माध्यम जनभाषाओं को स्वीकार किया। एक ओर वर्णवाद एवं जातिवाद के विरोध में श्रमणों ने मानव-समता का सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया और दूसरी ओर स्त्री, शूद्र, अन्त्यज एवं चांडालों तक को आध्यात्म का अधिकार प्रदान किया। समता, श्रम और शांति की प्रतिष्ठा के आधार पर अहिंसक समाज व्यवस्था के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अवसर प्रदान करना, श्रमणधर्म की स्वाभाविक परिणति है। श्रमणों ने युद्ध और हिंसा को कभी भी धर्म होने की महिमा प्रदान नहीं की, प्रत्युत उसे मानव की विवशता के रूप में ही माना। श्रमणों की अहिंसा सिर्फ प्राणीवध से विरत होना मात्र नहीं है, अपितु व्यक्तिगत एवं सामाजिक तृष्णा और परिग्रह के जितने क्रूर रूप हैं, जिनकी परिणति व्यक्ति जीवन एवं समाज के अन्यान्य-क्षेत्रों में विषमता, दुःख और दरिद्र के रूप में प्रतिफलित होती है, उन सबसे विरत होना अहिंसा की वास्तविक प्रतिष्ठा है।

सर्वसंग्राहकता जो किसी भी संस्कृति का सर्वस्व होना चाहिए, उसके पुरस्कर्ता श्रमण थे और ब्राह्मण उसके विरोधी। विरोधी-धर्म तथा विरोधी-सामाजिक व्यवस्था के बीच महावीर और बुद्ध के अनुयायियों ने पूरे भारतीय महाद्वीप में श्रेष्ठता के अधिकार से वंचित कोटि-कोटि जनता को अपने शास्ता के उपदेशों से आश्वस्त किया और उन्हें साहित्य तथा संस्कृति का मानवीय वर प्रदान किया। श्रमणों में बुद्ध के अनुयायियों ने तो इस महाद्वीप के बाहर भी जाकर विश्व के गोलार्ध में श्रमण-धर्म का प्रसार किया। संस्कृति प्रसार के अभियान में श्रमण जहां भी गए, वहां उन्होंने अपनी भाषा के साम्राज्य को स्थापित करने की चेष्टा नहीं की, प्रत्युत स्थानीय जनभाषाओं को अंगीकार करके उन्हें ही शिलालेखों, और काव्य साहित्य आदि में उत्कृष्टतम स्वरूप प्रदान किया। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के अनेकानेक भेदों में विभक्त होने के पीछे उनके द्वारा स्थानीय जनभाषाओं के अंगीकार और उसके प्रति आदर का भाव ही मुख्य था।

ठीक इसके विपरीत वैदिक धारा के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि मीमांसकों ने कहा कि महाश्रमण बुद्ध के शब्दों में कथित अहिंसा वैसे ही धर्म नहीं है, जैसे चमड़े में रखा हुआ गोदुग्ध ग्राह्य नहीं है। उनके समक्ष वेदों में संग्रहीत आर्येत्तर शब्दों की प्रामाणिकता का जब प्रश्न उठा, तो उन्होंने उसे तभी स्वीकृति प्रदान की यदि वे आर्यविरोधी नहीं हों। जैनों और बौद्धों ने अपने शास्ता के उपदेशों को 'आगम' कहा, श्रुति नहीं। केवल जैन-बौद्ध ही नहीं, प्रारंभिक सभी वैष्णव, शैव एवं शाक्त आचार्यगण ने भी श्रुति के विरोध में उनसे अपने प्रस्थान की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए अपने आधारभूत साहित्य को 'आगम' कहा और उसके लिए प्राकृतों का माध्यम स्वीकार किया। परवर्ती काल में भी वैष्णव, शैव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और शाक्तों पर जब ब्राह्मण-संस्कृति का प्रभाव बढ़ने लगा तो उन्होंने वेदों के विरोध में आगम का ही प्रामाण्य स्वीकार किया। इस प्रकार जैन और बौद्ध ही नहीं, प्रारम्भिक वैष्णव, शैव और शाक्तों के यज्ञवाद, जातिवाद और वेद-प्रामाण्यवाद सम्बन्धी विरोध ने तथा स्त्री, शूद्र आदि के अंगीकार ने श्रमणों के प्रभाव-क्षेत्र को अखिल भारतीय बना दिया।

यहां यह सब कहने का अभिप्राय मात्र इतना ही है कि इस तथ्य को समझने में कोई कठिनाई न हो क्योंकि भारतीय संस्कृति के निर्माण में श्रमणों की भाषा एवं साहित्य आदि का प्रधान एवं श्रेष्ठ अवदान है और उन्हें इसके लिए विरोधी मान्यताओं के साथ किस प्रकार चतुर्दिक संघर्ष करना पड़ा इस तथ्य के स्पष्ट होने में कठिनाई नहीं होती कि आगम साहित्यों में प्रतिबिंबित एवं सुरक्षित है। कहा जा सकता है कि श्रमण-संस्कृति का पर्याय आगम संस्कृति रही है। इसी पृष्ठ भूमि के कारण आगम संस्कृति में सर्व भारतीयों की संस्कृति प्रतिबिंबित हुई, जबकि संस्कृत की संस्कृति में अल्पसंख्यक वर्ग की वर्गीय-संस्कृति। दर्शन और आध्यात्मिक चिंतन की दृष्टि से भी यदि इस तथ्य की परीक्षा करें तो वेद और उपनिषदों से जैन और बौद्ध आगम अधिक पुरोगामी एवं श्रेष्ठ सिद्ध होंगे। बुद्ध एवं महावीर ने दार्शनिक चिन्तन की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया प्रस्तुत की, विभज्यवाद-मध्यम मार्ग और अनेकान्तवाद के द्वारा स्पष्ट किया जाता है। इस ओर ध्यान जाना चाहिए कि विभज्यवाद, मध्यममार्ग, अनेकान्तवाद मात्र एक दर्शन-प्रस्थान नहीं है, अपितु यह चिन्तन की वह प्रवहमान प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अनेकानेक दार्शनिक प्रस्थानों के उद्गम की संभावना खड़ी होती है जो चिन्तन प्रक्रियाधारित नहीं होती उसकी गणना श्रेष्ठ दर्शनों की कोटि में नहीं की जा सकती, प्रत्युत वे पूर्व-प्राप्त विश्वासों की व्याख्या मात्र हैं।

पालि-प्राकृत आगमों में अपने समकालिक दृष्टिवादों का जो प्रभूत संग्रह परीक्षण एवं विश्लेषण हुआ, वह समसामयिक साहित्य में कहां उपलब्ध है ? प्राचीनतम काल में परमाणु के सम्बन्ध का गंभीर एवं सूक्ष्म अध्ययन जैसा जैनों द्वारा नीति-व्यवस्था तथा गुणस्थानों के आधार पर योग एवं विविध साधनाओं द्वारा उसकी आध्यात्मिकता का स्वरूप अन्यत्र मिलना संभव नहीं है। जीवन के आन्तर-बाह्य पक्षों से सम्बन्धित विद्याओं का इतना बड़ा वैभव पालि और प्राकृतों के माध्यम से विकसित होना तथा उसका सामान्य जन-जीवन के साथ सम्बन्ध जोड़े रखने का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निरन्तर प्रयास करना, अल्पसंख्यक संस्कृति की अपेक्षा श्रमण-संस्कृति को भारतीयता का विशाल आयाम प्रदान करता है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण चर्चा के बाद यह प्रश्न समाधान की नितांत अपेक्षा रखता है कि पिछले हजार वर्षों से पालि-प्राकृतों के प्रभाव में उत्तरोत्तर ह्रास होना, जिससे कि उसका सर्व भारतीय प्रतिनिधित्व निःशेष सा हो जाय, उसके पीछे क्या क्या कारण हैं ? यह प्रश्न अन्य अनेक ऐतिहासिक प्रश्नों को उठाता है, जिसका विवेचन यहां संभव नहीं है, किन्तु इस मूल बात की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए कि पालि-प्राकृतों के ह्रास के पीछे जबरदस्त सांस्कृतिक पराजय ही कारण है। वास्तव में पालि-प्राकृत की पराजय भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक उदारता की पराजय और सर्व भारतीय लोक संस्कृति की पराजय थी। यह भी संभव है कि आक्रामक अल्प-संख्यक संस्कृति ने अपने में उन उपेक्षित गुणों को आत्मसात किया हो, जो श्रमणों की कभी एकमात्र विशेषता थी। कारण के रूप में यह भी संभावित है कि श्रमणों की दुर्बलता के पीछे और विरोधी आक्रमण का सामना करने की अक्षमता के पीछे उनके अपने स्वयं के दुर्गुण हों, जिन्हें उन्होंने परवर्ती संघर्ष काल में अपनाया हो। इसी प्रकार के प्रश्नों के समाधान के बिना आज आगमों की समस्या खड़ी है। इस पूरी परिस्थिति को एक वाक्य में कहा जा सकता है कि आगमों की समस्या उसका सांस्कृतिक संकट है। पालि-प्राकृत आदि का बहिष्कार सिर्फ भाषा बहिष्कार नहीं, अपितु संस्कृति 'बहिष्कार है। इस संकट का रूप केवल बौद्धों, जैनों या अन्यान्य संत-सम्प्रदायों की दृष्टि से देखना संकट के आयाम को छोटा समझना होगा। वास्तव में भारतीय संस्कृति और 'भारतीयता का सकंट है' जिससे आज की मूलभूत प्रायः सभी राष्ट्रीय समस्याएं साक्षात् या परम्परा से जुड़ीं हैं अतः इनका विवेचन नितान्त अप्रेक्षित है, किन्तु इस निबन्ध में यह सम्भव नहीं है।

इस प्रसंग में सर्वप्रथम श्रमणों के इस प्रवृत्ति का ऐतिहासिक विश्लेषण अवश्य होना चाहिए कि उन्हें परवर्ती काल में संस्कृत भाषा का आश्रय ग्रहण करने की क्या विशेषतायें लगी ? यह ठीक है कि संस्कृत स्वयं में एक भाषा मात्र थी। जिसे अर्थ सम्प्रेषण का माध्यम स्वीकार करना आपत्तिजनक नहीं होना चाहिए। अद्यावधि छान्दस् से उतार करके संस्कृत को "लौकिक' बनाने में श्रमण आचार्यों का महान् योगदान है। यहाँ तक कि बौद्धों के महायान सूत्रों का एक विशाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साहित्य एक ऐसी लौकिक संस्कृत में हैं, जिसे 'गाथा संस्कृत' 'मिश्र संस्कृत' या 'संकर संस्कृत' कहा जाता है। जिसका अनुशासन पाणिनीय अनुशासनों से नितांत भिन्न है। इतने के बावजूद श्रमणों का प्रयास संस्कृत को लोक-भाषा नहीं बना सकी, क्योंकि संस्कृत जिसके घर की भाषा थी, जो हजारों वर्ष के प्राकृतों के साथ संघर्ष में अपने को बचा चुकी थी और जिसने अपने सीमित आयाम में ही उत्तरोत्तर अपनी विशिष्टता में वृद्धि की।

अन्य ऐतिहासिक कारणों से श्रमण जब दुर्बल होते गए तो उन्होंने अपनी रक्षा के लिए ब्राह्मण संस्कृति और विशिष्टतावाद को अंगीकार करना प्रारंभ कर दिया। विशिष्टता के ग्रहण की इस प्रवृत्ति ने उन्हें प्रबल तो नहीं बनाया, इसके विपरीत उससे उनका सर्व-जन का परम्परागत सम्बन्ध टूटता गया, जिससे उत्तरोत्तर उनकी परम्परागत संस्कृति और भाषा जन-समर्थन से दूर होती गई। अश्वघोष ने अपने संस्कृत नाटक में प्राकृत को स्थान दिया। किन्तु जिन मुखों से वह निकली वे विशिष्ट वर्ग के नहीं थे, अपितु वे स्त्री और शूद्र पात्रों के अपवित्र मुख थे। भाषा के माध्यम से विशिष्टता कैसे प्रवेश करती है अश्वघोष उसके महत्त्वपूर्ण निदर्शन हैं। अश्वघोष प्रारंभिक जीवन में महान् वैदिक पण्डित थे। बाद में महाश्रमण के मानवतावादी प्रभाव में आकर श्रमण भिक्षु बने। श्रमण-धर्म का जन साधारण के अन्दर प्रसार ही उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। इसी की पूर्ति में उन्होंने भिक्षु-विनय के किंचित् विरोध में जाकर 'बुद्ध चरित' और 'सौन्दरनन्द' जैसे महाकाव्यों का सर्जन किया और जन-साधारण में जाकर उसका संगीत के साथ गान किया। कहा जाता है कि बुद्ध चरित आदि के गान से मनुष्य ही नहीं पशुओं का हृदय भी द्रवित हो उठता था, घोड़े हिनहिना उठते थे। जिससे उस श्रमण महाकवि का नाम भी अश्वघोष पड़ा। यह सब ठीक था, किन्तु अश्वघोष ने जब अपने काव्य नाटकों के लिए संस्कृत ग्रहण की तो उनके द्वारा ही होने वाली प्राकृत की अवमानना की ओर उनका ध्यान क्यों नहीं गया? इस प्रकार का यह एक उदाहरण है, किन्तु ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जिनके विश्लेषण से पालि-प्राकृत और अपभ्रंशों का संकट स्पष्ट होता है।

देखा जाता है कि जैसे-जैसे संस्कृत के साथ प्राकृत का सहवास बढ़ा, वैसे-वैसे उसकी दशा गिरती गई। साहित्यिकता के नाम पर प्राकृत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवं पालि भाषाएँ संस्कृत की तरह ही कृत्रिम होती गई। फलतः वह सर्वजन की जगह अभिजात-वर्ग का प्रतिनिधित्व करने लगी। प्राचीन काल के प्राकृत साहित्य की अपनी समतावादी संस्कृति थी एवं साहित्य और संस्कृति के बीच का अन्तर नगण्य था। बाद के प्राकृतों में वह अन्तर बढ़ता गया। इस प्रकार की आदर्श-च्युति के पीछे संस्कृत और ब्राह्मणों की विशिष्टतावादी संस्कृति के अनुकरण की प्रवृत्ति थी। प्राकृतें जब अपने आदर्श शिखर पर थीं, तो संस्कृत अपने साहित्यिक गौरव के लिए उनका अनुकरण करती थीं। किन्तु स्थानच्युत के बाद दशा बदल गयी। यहाँ तक कि अब संस्कृति की सहवासिनी प्राकृतें भी मिटती जा रही हैं। वे संस्कृति की कृपा की छाया में रहकर दम तोड़ती जा रही हैं। लोक संस्कृति का प्रतिनिधित्व न होने के कारण संस्कृत को मातृ-भाषा कहा जाता है, जीवित भाषा नहीं, तो भी उसकी अभिजात संस्कृति का समाज और राज्य पर आज भी हठात् कब्जा जमा है। प्राकृत तो उतने से भी वंचित है।

उपर्युक्त बात तथ्यपूर्ण है तो प्रश्न है कि इसके समाधान की दिशा क्या हो ? जिसकी ओर मनीषियों एवं तत्त्वचिन्तकों का ध्यान जाना चाहिए। परामर्श के रूप में कुछ बातें रखी जा सकती हैं, जिन पर विमर्श होना चाहिए।

यह बहुत ही आवश्यक है कि श्रमण जीवन-दर्शन की विशेषताओं को छिपाने वाली व्याख्याओं की ऐतिहासिक एवं तात्त्विक परीक्षा कर वास्तविकता को प्रकट किया जाय, जिससे यह व्यापक भ्रान्ति समाप्त हो कि श्रमणवादी-दर्शन और पालि एवं प्राकृत आदि भाषाएँ वेद उपनिषदों और संस्कृत की ही प्रसूति हैं। उदाहरण के रूप में अनेकान्तवाद को समन्वय या समझौतावाद समझा जाता है। जैन विद्वान् भी इसका समर्थन करते पाए जाते हैं। इसकी पृष्ठभूमि में वर्तमान समाज का दबाव काम करता है। इसी दबाव में आकर क्रांतिकारी शक्तियाँ कुण्ठित होकर अपने को अपने-अपने संप्रदाय में ही घेर लेती हैं। उनमें इसकी हिम्मत जाती रहती है कि बुद्ध और महावीर के समतावादी एवं मानवतावादी विचारों को जन साधारण के समक्ष प्रस्तुत करें। ऐसे लोग अपनी कृत्रिम श्रेष्ठता को सुरक्षित रखने के लिए कुल-श्रेष्ठता, जाति-श्रेष्ठता को स्वीकृति प्रदान करते हैं। और वास्तव में महावीर और बुद्ध के विरुद्ध में शताब्दियों से जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस सम्पूर्ण वात्या-चक का भेद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना होगा। इसके लिए आवश्यक है—स्त्री-शूद्र एवं जन-जातियों तक पहुंच कर उन्हें महावीर और बुद्ध के संदेशों से सांत्वना प्रदान की जाय। इस प्रसंग में प्राकृत एवं अपभ्रंशों का वर्तमान प्रादेशिक भाषाओं और स्थानीय बोलियों के साथ संबंध जोड़ना नितांत आवश्यक होगा। इस प्रकार की अनेकानेक बातें हैं, जिनकी ओर ध्यान देना होगा। सर्वाधिक ध्यान इस ओर देना होगा कि प्राकृतों की समस्या पर साम्प्रदायिकता की दृष्टि से नहीं, राष्ट्रीय परिवेश में विचार किया जाय और उसके समाधान को भी भारतीय संस्कृति के विराट् संदर्भ में स्थापित करें। किन्तु इसके प्रारंभ का उत्तरदायित्व उन्हीं लोगों पर है, जो श्रमण परंपरा से प्रभावित हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समतावादी चिन्तन

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय भारत के धर्मनिरपेक्ष, समतायुक्त तथा प्रजातन्त्रात्मक दृष्टि के परिपोषक थे। वे राष्ट्र तथा उसके कर्णधारों के चिन्तन एवं व्यक्तित्व से प्रभावित थे। वह भारत के संविधान में उल्लिखित बातों को जीवन तथा समाज में अक्षरशः पालन के हिमायती थे। इसीलिए कई मौकों पर परम्परा के प्रतिरोध में वह हिचक नहीं महसूस करते थे। भारत के राष्ट्रपति १९५४ में बनारस आये और तत्कालीन संस्कृत कालेज में ब्राह्मणों की एक सभा समायोजित की गयी। जिसमें उन्होंने कर्मकाण्ड के रूप में २०० ब्राह्मणों के पैर धोये। इसका विवरण डा० लोहिया ने निम्नलिखित रूप में दिया है।

"भारतीय गणतन्त्र के राष्ट्रपति ने पुण्यनगरी बनारस में सार्वजनिक रूप से दो सौ ब्राह्मणों के पैर धोये। सार्वजानिक रूप से किसी के पैर धोना अश्लीलता है। इन अश्लील काम को ब्राह्मण जाति तक सीमित करना दण्डनीय अपराध माना जाना चाहिए। इस विशेषाधिकार प्राप्त जाति में अधिकांशतः ऐसे को सम्मिलित करना जिनमें न योग्यता हो, न चरित्र, विवेक बुद्धि का पूरा परित्याग है जो कि जाति और पागलपन का अवश्यंभावी अंगी है।

राष्ट्रपति इस अश्लीलता का प्रदर्शन कर सके। यह मुझ जैसे लोगों पर बड़ा अभियोग है, जो कि सिर्फ नपुंसक गुस्से में ही उबल पड़ते हैं।

इस अपराध में उन दो सह अपराधियों के बारे में मैं ज्यादा नहीं कहूंगा जो उत्तर प्रदेश में शक्तिशाली स्थानों पर हैं। उनमें से एकतो बच्चों की तरह मचल रहे हैं कि बनारस उन्हें ब्राह्मण की तरह मान्यता दे। और दूसरे शायद हारकर बैठ गये हैं और हिन्दूवाद की विनम्रता नीचता के उस विमर्श को उच्चतम चोरी समझ रहे हैं। इधर कुछ वर्षों में बनारस ने एक बुराई को जन्म दिया है, जिसमें द्विजों के दूसरे समूहों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को ब्राह्मण रूप में मान्यता प्रधान करने का प्रमाण होता है। और जिसे वे कर्मण ब्राह्मण कहते हैं। उनके हित में जन्म के ब्राह्मण की भर्त्सना होती है। इस लत में पड़े लोगों की ब्राह्मणों के प्रति एक विचित्र संकीर्णता है। उन्हें या तो अपमानित करते है या फिर पूजते हैं। जो जन्म से ब्राह्मण होते हैं उनके साथ बनिये और कायस्थ बराबरी का स्वाभाविक मानवीय सम्बन्ध बना नहीं पाते।

मैं यह बता दूं कि इस घिनौने कार्य का पूरा किस्सा मुझे एक ब्राह्मण ने ही बतलाया। उसे उन दो सौ में सम्मिलित किया गया था। वहीं अकेला था जो देश के राष्ट्रपति द्वारा पैर धुलवाने के नीच कर्म का अपराधी बनने के पहले ऐन मौके पर ग्लानि से भरकर अलग हो गया। उसकी जगह फौरन ही दूसरे आदमी को दे दी गयी।

संस्कृत के इस गरीब अध्यापक को मैं हमेशा श्रद्धा से याद रखूंगा। इस भयंकर राक्षसी नाटक में वही तो एकमात्र मनुष्य था। ऐसे ही नर नारियां हलांकि जन्म से ब्राह्मण हैं दक्षिण के विकृत ब्राह्मण विरोध से समूचे देश को डूबने से बचा रहे हैं। (जातिप्रथा पृ० १-२ लोहिया) संस्कृत के यह स्वामिभानी अध्यापक प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय थे जो संविधान सभा के द्वारा संविधान के पास हो जाने तथा लागू हो जाने के बाद उसको मनुस्मृति से उच्च दर्जा देने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। अतएव जहां भी मानवसमता के विरोध में कोई आयोजन या कार्यक्रम बनता था वह अकेले खड़े होकर उसका विरोध करते थे तथा भारतीय परम्परा एवं शास्त्रों से समता के बिन्दु खोजने का प्रयत्न करते थे। "भारतीय परम्परा में नवीन संभावनाएं" नामक पुस्तक में उन्होंने बार बार प्रयत्न करके समता के मूल बिन्दुओं को निकालने तथा निकलवाने प्रयत्न किया है, जो आज के युग में द्रष्टव्य एवं पठनीय है।

भारतीय संस्कृति की एक धारा समता मूलक रही है पर उधर बहुत कम लोगों का ध्यान जा रहा है। फलत: भारतीयता की पूर्णता से वे विलग हो रहे हैं। कतिपय आधुनिक पण्डितों को इसका ज्ञान है पर वे भी पूजे जाने के लोभ में एक धारा का ही बन कर रह जाते हैं। यद्यपि ज्ञान के क्रम में दूसरी धारा को मूल्य देते हैं पर व्यवहार में उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। फलत: आज दोनों धाराओं में एक कटुता पैदा हो रही है जो राष्ट्रीय संस्कृति को कहीं किसी वर्ग की संस्कृति न मानकर तिलाञ्जतिल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दे देते हैं। यद्यपि मूलतः साम्य है और वैषम्य अविद्याकृत है कहा भी है

तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमसाम्यमुपैति ।।
(मुण्डक तृतीय मु० १.३)

व्यवहार तथा इतिहास बोध से भी मूल में साम्यभाव था आद्य युग समता युग ही कहा जा सकता है। कहा भी है—

नैव राज्यं न राजासीत् न च दण्डो न दाण्डिकः ।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।
शान्तिपर्व ५९/१४

अर्थात् उस समय न राजा था और न राज्य था, न दण्ड था, न दाण्डिक था सर्वत्र धर्म ही धर्म था और उसमें ही सब एक दूसरे की रक्षा करते थे। इस युग तक सामाजिक संघर्ष नहीं था। विश्वमैत्री प्रतिष्ठित हो रही थी। तभी तो वेद कहते हैं—

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।।

न केवल वेद प्रत्युत गीता आदि ग्रन्थ भी एकत्व की तथा समता की भावना का उपदेश देते हैं। तथा कहते हैं।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
एवंभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहःकः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ।।
(यजुर्वेद— ४०.७.८)

अर्थात् सभी प्राणियों को अपनी आत्मा में और अपनी आत्मा को सभी में देखना चाहिए और स्वीकार करना चाहिए कि अपनी आत्मा सभी प्राणियों के रूप में विद्यमान है। यह समता का आदर्श है जो प्राणिमात्र में एकता, मैत्री तथा तदाकारता को प्रस्तुत करती है। ऐसी स्थिति होने पर भेद कहाँ रह जाता है तभी तो कहा है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः ।।

अर्थात् ज्ञानी समदर्शी होता है वह विद्वान, ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को भी समान देखता है। ऐसी समभावना तो पहले भी प्राप्त करने की चेष्टा की गयी थी। तभी तो महाभारतकार कह उठता है—

प्राप्यज्ञानं ब्राह्मणात् क्षत्रियाद्वा वैश्याच्छुद्रादपि नीचादमीक्ष्णम् ।
श्रद्धातव्यं श्रद्दधानेन नित्यं न श्रद्धिनं जन्म-मृत्यू विशेताम् ।।

अर्थात् ज्ञान चाहे ब्राह्मण से, चाहे क्षत्रिय से, वैश्य से, शुद्र से प्राप्त हो उसमें श्रद्धा करनी चाहिए, जो ज्ञान दायक के प्रति श्रद्धा करता है वह जन्ममृत्यु से परे हो जाता है। ज्ञान लेने में जाति बाधक नहीं हैं अत्यन्त नीच से भी ज्ञान (धर्म) ग्रहण करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

श्रद्धधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।।

इस प्रकार भारतीय शास्त्रों में जगन्मैत्रीवाद है तथा समदर्शिता एवं समता है। पर ऐसा नहीं है कि सर्वशास्त्रों में समता के मूल्य ही न हों। क्योंकि वर्गभेद की स्थापना पर मानव-मानव में भेद के भी उदाहरण प्रमुख मात्रा में हैं और उन्हीं का पृष्ठ पोषण समकालीन राजनीति कर रही है। पर लगता है कि प्राचीन कृतियों ने जब व्यवस्था बनाई थी। उस समय एक के हित की बनाई होगी। और बाद में स्वार्थ परक होकर वैसे ही बन गया जैसे संविधान सर्वहित को ध्यान में रखकर बना और आज वह वर्गवादी, भेदभाव युक्त हो, कटुतावाला बनता जा रहा है। शास्त्रों में भी कटुता का भाव भरा पड़ा है जैसे—

धर्मोपदेशं दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः ।
तप्तमासेचयेत् तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः ।।
(गौ०ध० ३२४)

जो शुद्र विप्रों को धर्मोपदेश करने लगे। उसके मुख तथा श्रोत्र में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जलता हुआ तेल भर देना चाहिए। इसी प्रकार की बातें स्मृतियों में भी कहा है—जप होम परक शुद्र राजा के द्वारा बध्य होता है क्योंकि उसके जप होम तीर्थयात्रा तथा देवाराधन आदि से पार लगता है।

बध्यो राजा स वै शुद्रो जप-होम-परश्च यः।

ततो राष्ट्रस्य हन्ताऽसौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ।।

इसी प्रकार अन्य अनेकानेक वचन हैं। इसका तात्पर्य मात्र यह लगाना चाहिए कि शास्त्रों में साम्य भी वर्णित है असाम्य भी। साम्य की स्थापना की चेष्टा करनी पड़ती है और असाम्य स्वाभाविक है। पर यदि विरोध पर बल दिया जायेगा तो समाज में कटुता पैदा होंगा और साम्य पर बल दिया जायेगा तो सौमनस्य पैदा होगा। प्रो० उपाध्याय साम्य के पक्षधर थे। वह उन परम्परागत शास्त्रीय विधाओं के समर्थक थे जिनसे सामाजिक उच्चावचभाव समाप्त होता है। वह महाभारत के कुछ श्लोकों को गाया करते थे। तथा उनसे सामाजिक समता की दृष्टि पनपाने में सहयोग पाते थे। जैसे महाभारत में ब्राह्मी सरस्वती वेदवाणी के लिए सभी वर्णों को अधिकार दिया है तथा कहा है—

इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।

विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गताः ।।

इस प्रकार चारो वर्णो को ब्राह्मी सरस्वती का अधिकार है। यह ब्रह्मा ने स्वयं बताया, बाद में अज्ञानता से व्यत्यय हो गया। पर वहीं पर पञ्चमहायज्ञों के विधान में भी शुद्रों को अधिकार दिया गया है—

इत्येतैः कर्मभिरर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः।

धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ।।

(म०भा० शान्ति १८८/१४,१५)

यज्ञक्रियादि में शुद्रों का अधिकार प्रतिषिद्ध नहीं है। महाभारत तो शुद्रों के शास्त्राधिकार की घोषणा भी करता है।

श्रावयेच्चतुरो व्वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः।

वेदस्याध्ययनं हीदं, तच्च कार्यं महत् स्मृतम् ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वे वर्णाः ब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च सर्वे नित्यं व्याहरन्ते च ब्रह्मातत्त्वं शास्त्रं ब्रह्मबुद्ध्या ब्रवीमि सर्व विश्वं ब्रह्म चैतत् समस्तम् (म०भा० शान्ति पर्व) प्राचीन काल में तो ब्राह्मण चाण्डालों को भी वेद सुनाया करते थे—

पुरा वेदान् ब्राह्मणा ग्राममध्ये धुष्टस्वरा वृषलान् श्रावयन्ति ।
(तत्रैव- ९४.११)

बादरि वैदिक कर्मकाण्ड में शुद्र का पूरा अधिकार मानते थे (भी. सू. ६,१,७,२७)। भारद्वाज श्रौतसूत्र के अनुसार भी शुद्र तीनो वेदों को पढ़ सकता है (५.२.२८) अहिर्बुध्नसंहिता चारो वर्णों को वेद में अधिकार देती है।

ये हि ब्रह्ममुखादिम्यो वर्णाश्चत्वार उद्‌गताः ।
ते सम्यगधिकुर्वन्ति त्रय्यादीनां चतुष्टयम् ।।
(१५,२०-२१)

मध्यकालीन वाजपेयी संहिता तो वेदवाणी में शुद्र तथा चारण को भी अधिकृत करती है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शुद्राय, चार्याय च स्वाय चारणाय च ।।
(यजु० २६/२)

पर दुःखद बात है कि शास्त्र द्वारा प्रतिपादित परम्परा की उपेक्षा करके शवर, कुमारिल, शंकर-रामानुज ने शुद्र को श्रवणाध्ययन से बाहर कर दिया।

वेद की कई ऋचायें शुद्र ऋषियों द्वारा निर्मित हैं। कहते हैं कि इलूषा के पुत्र कवष को श्रषियों ने सरस्वती नदी के तट पर सोमयज्ञ से बाहर कर दिया। तब वह प्यास से व्याकुल होकर किसी प्रकार जीवन धारण किया। तभी उसको 'अपोनप्त्रीय सूत्र अर्थात् आपः सूक्त के दर्शन हुए। यह सूक्त वेद में दशम मण्डल में केवल ऐलूष के नाम से अब तक प्रचलित है। यह कथा ऐतरेय ब्राह्मण में आयी है। जो इस प्रकार है—

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत/ते कवषमैलूषं सोमादनयन- "दास्यापुत्रः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षीष्टेति। तं वहि धन्वोदवहन् - अत्रैनं पिपासाहन्तुं सरस्वत्या उदकं मा पातु इति। सबहिर धन्वोरुढ़ः पिपासया वित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत्।

(ऐतरेयब्राह्मण-२.३.१)

इसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी वेदाधिकार है उनका यज्ञोपवीत भी स्वीकार किया गया है—

पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।

अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा।।

(यमस्मृति-मनुपरिशिष्ट-पृ.१४)

इसी प्रकार सूत्रसंहिता शिवमाहात्म्य खण्ड ७/२० पर द्विज स्त्रियों के श्रोताम्यास में अधिकार है—

द्विजस्त्रीणामपि श्रोत्राम्यासेऽधिकारिता (७/२०)

हारीत स्मृति में दो प्रकार की स्त्रियां हैं। ब्रह्मवादिनी तथा सद्योवधू ब्रह्मवादिनी को उपनयन, अग्नीन्धन, और अपने घर में भिक्षाचर्या का अधिकार है कहा भी है— द्विविधाः स्त्रियः—ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च/ तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनं अग्नीन्धनं स्वगृहे भिक्षाचर्यं च। सद्यो वधूनामुपनयनमकृत्वा विवाहः कार्यः। (हारीत स्मृति)

मीमांसासूत्र में भी स्त्रियों को वेदाधिकार स्वीकृत है— जातिं तु वादरायणोऽविशेषात् तस्मात् स्त्र्यपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्। मीमांसासूत्र— ६/१/४/१७ आत्रेयी, विश्वावारा, भवाला, घोषा, काक्षीवती, आदि स्त्रियों का ऋग्वेद के सूक्तों का द्रष्टा माना गया है।

लगता है वर्गवादी व्यवस्था बनते-बनते आश्रम व्यवस्था में वर्ग वर्ण बनकर जाति के रूप में खड़ा हो गया और इसीलिए आज इसका लाभ वे लोग पा रहे हैं। जो लोग इस के पात्र नहीं है पर जाति के कारण उनका पिछड़ापन मान कर आश्रय लिया जा रहा है। और इसी लिए क्रिमीलेकर का सिद्धान्त चल नहीं पा रहा है। और चल भी नहीं सकता है क्योंकि भारतीय शास्त्रों, परम्पराओं तथा सामाजिक अवमूल्यन ने जातिवाद को पुष्ट किया है। आश्चर्य तो यह है कि दर्शन में जाति को सामान्य कहते हैं। और वह सामान्य नित्य होता है। जबकि जाति को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनित्य होना चाहिए। पर सामाजिक विसंगति की शाश्वत स्थिति ने जातिवादी आरक्षण व्यवस्था के द्वारा जाति को नित्य सा बना दिया है। दार्शनिकों को एतदर्थ ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। बौद्ध लोग सामान्य को पदार्थ नहीं मानते तथा अनित्य परिकल्पित मानते हैं। प्रायः निचले स्तर के लोग बौद्धधर्म को स्वीकार कर चुके हैं। पर जाति के मामले में अब उसको पकड़े हुए हैं। इसका प्रतिफल ऐसा लग रहा है जैसे जातिवाद जो कल्पनात्मक है नित्यरूप में खड़ा होने लगा है।

जाति तथा यज्ञोपवीत को तोड़ने का समारम्भ प्रो० उपाध्याय ने राष्ट्र नायक जय प्रकाश नारायण के संपर्क में प्रारम्भ किया। पर जैसे जैसे उसको समाप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है वैसे - वैसे यह रक्तबीज की भाँति प्रबल हो रहा है। स्वयं प्रो० उपाध्याय जाति तोड़ो आन्दोलन में दिल्ली जाने के पूर्व कोर्ट से जाति तोड़ने के लिए कारवाई कर रहे थे। कोर्ट ने इतना फँसाया कि उनका उपाध्याय शब्द हट नहीं पाया और फलतः उसी प्रकार जाना पड़ा। लोहिया ने अपनी जाति प्रथा में नाइकर के साथ जो समझौता किया उसमें जाति प्रथा की समानता से दुराव का प्रश्न भी रखा गया। पर दोनों कह कर रह गये और जाति प्रथा नहीं समाप्त हुई।

नाइकर साहब के कथोपकथन को स्पष्ट करने हेतु यहां प्रस्तुत किया जाता है। 'जाति प्रथा' नामक अपने ग्रन्थ में डा० लोहिया कहते हैं कि वे तमिलनाडू के वृद्ध नेता श्री नाइकर से मिलने मद्रास जेल में गये। नाइकर ने बातचीत प्रारम्भ करने के पहले कहा मैं अच्छी अंग्रेजी नहीं जानता। हिन्दी तो बिल्कुल नहीं जानता तो लोहिया ने कहा— आप तमिल में बोले मैं हिन्दी में बोलूंगा। और गौड़मुरहरि अनुवाद करके बतलायेंगे। नाइकर ने बहुत अच्छा कहकर बात प्रारम्भ की। कहा आप से मिलकर खुश हुआ। मन का बोझ हलका हुआ। लोहिया जी ने कहा—आप का स्वास्थ कैसा है ? नाइकर ने कहाँ पहले से अच्छा है आदर्शों के लिए कैद भुगतनी पड़ रही है। लोहिया जी ने कहा— आप की उम्र के लोगों को जेल में नहीं रहना चाहिए। इसके साथ ही आगे लोहिया जी ने कहा—यह अच्छी बात है कि जाति प्रथा का अन्त होना चाहिए। लेकिन व्यक्तिगत ब्राह्मणों के खिलाफ इस आन्दोलन का रूख नहीं होना चाहिए।

नाइकर ने कहा—हिंसा से मेरा सरोकार नहीं है। असली मत यह है कि मद्रास का प्रेस ब्राह्मणों के हाथ में है, वे मुझे बदनाम करना चाहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। मैं अपने को सदैव नियंत्रित रखता हूँ। किसी प्रकार की हिंसा मेरे दल और ब्राह्मणों दोनों का विनाश कर डालेगी। लेकिन मेरे जीवन काल में ऐसा नहीं होने को है।

लोहिया जी ने कहा—जाति प्रथा की लड़ाई में मै भी आपकी मदद करने तथा साथ-साथ जेल जाने को तैयार हूँ। यदि जातिगत नाम यह हटाने के आन्दोलन चलाये जाय तो उसका मैं स्वागत करूगां। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप यह अपनी निम्नलिखित मांगे छोड़ें।

१ उत्तर भारत का विरोधी आन्दोलन
२ हिन्दी विरोधी आन्दोलन
३ गांधी जी की तस्वीरें जलाना
४ व्यक्तिगत ब्राह्मणों के प्रति हिंसा का प्रयोग।

गांधी जी राष्ट्र के प्रतीक हैं उनकी तस्वीरें नहीं जलाई जानी चाहिए। नायकर ने कहा—ये चीजे तो गौड़ हैं प्रमुख लड़ाई तो जातिप्रथा से है...........मैं जाति का नाश चाहता हूँ सिर्फ जाति सुधार काफी नहीं है। इस लक्ष्य के लिए लोहिया ने कहा—राष्ट्र की एकता को स्वीकार करते हुए, व्यक्तिगत हिंसा से अलग रहते हुए आपके आन्दोलन में कानून तोड़ने तक मैं आप के साथ हूँ उन्होंने बर्मा नेता आंगसांग की दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कहा—मैं बर्मी हूँ और सभी अपने बच्चों की भलाई चाहती हूँ, चाहे वे वफादार हो या विद्रोही। मैं उन्हे सजा दूंगी फिर भी वे ऐसे अपने बच्चे हैं। (जातिप्रथा पृ० ७६-७७)

प्रो० उपाध्याय जी को यह किताब बहुत प्रिय थी कभी-कभी इसके उदाहरण वे सुनाया करते थे। वह भी जातिवाद तथा कुप्रथाओं के विरोधी थे पर सांस्कृतिक दृष्टि से वैदिक संस्कृति के प्रबल पक्षधर थे। मानव समता तथा आध्यात्मिक समत्व के पक्ष-पाती थे। पर केवल दर्शन की दृष्टि से नहीं व्यावहारिक धरातल पर वह समता प्रस्थापित करना चाहते थे। वेदान्त का प्राध्यापक होने के नाते और बाद में बौद्ध दर्शन एवं पालि के आचार्य होने के नाते उनमें संस्कारों की समस्या खड़ी होती थी। दार्शनिक दृष्टि से तो वेदान्त में भी भेद दृष्टि नहीं बनती है और उसी प्रकार बौद्धों के भी विज्ञानाद्वयवाद में भेद नहीं है पर बौद्धों ने सामाजिक भेद-भाव को तोड़ा और वेदान्तियों ने केवल व्यावहारिक तथा परमार्थ को मानकर समस्या को टाल दिया। प्रो० उपाध्याय यहां टूटते से नजर आने लगे और उन्होंने दार्शनिक विसंगति तथा व्यावहारिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विसंगति को समाप्त करने के लिए प्रयत्न किया। फलतः जब उनको सन् ४२ के योद्धाओं तथा नेताओं के सदाचरण तथा कथन में भेद दिखाई दिया तो आचार्य नरेन्द्र देव की विद्वत्ता तथा जीवन सुलभ सहजता के कारण उन्होंने वेदान्त विभाग छोड़कर बौद्ध विभाग का वरण किया क्योंकि बौद्धों के करनी कथनी में कम भेद है पर वेदान्तियों में जमीन आसमान का है। वह भेद के समापन के लिए वेदान्त तथा बौद्ध के आध्यात्मिक दृष्टियों के प्रत्यक्ष भाव का प्रजातन्त्र में डा० अम्बेडकर के इहलोक वादी दृष्टि को भी जायज मानने के लिए तत्पर थे। इसीलिए वह सर्वदा मानव को महत्त्व देते थे तथा महाभारत के इस वाक्य को गुनगुनाते थे—गुह्यं ब्रह्म तदिदं वो ब्रवीमि नहि मानुषाच्छेष्ठतरं हि किंचित् अर्थात मानव स्वरूप से बढ़कर कोई अन्य श्रेष्ठता नहीं है। अतः मानव की समता स्थापित होंनी चाहिए। इस समता की स्थापना में जो भी आड़े आता है वह भी तोड़ा जाना चाहिए। चाहे वह संस्कार, धन, जाति, भाषा, आध्यामिकता, धर्म या देश क्यों न हो वह तोड़ा अवश्य जाय पर हिंसा से नहीं अहिंसा से क्योंकि उनके जीवन में गांधीवाद का प्रभाव था। बुद्धवाद का प्रभाव था। राष्ट्रवाद की अहिंसक संवादी चेतना जागृत थी। तभी तो ४२ के स्वातंत्र्य युद्ध में उतरे। वह समत्व के लिए तन्त्रों के दर्शन को ज्यादा महत्त्व देते हैं तथा कहते हैं—

तान्त्रिक दर्शनों ने द्वैतवादी या अद्वैतवादी सभी ने वेदान्त के मायावाद को अस्वीकार कर स्वतंत्रता, समता और व्यक्ति के आत्मप्रत्यक्षीकृत ज्ञान के सिद्धान्त को स्थापित किया। इस स्थिति में कहा जा सकता है कि तांत्रिकों ने दो सत्यों के विरोध को यथा संम्भव दूर करने का प्रयास किया।

उन्होंने शास्त्रों में सामाजिक समता के स्वर नामक परिचर्चा का आकलन करते हुए कहा कि वर्णवादी तथा वर्ण व्यवस्था मूलक व्यवस्थावादी भी अपने चिन्तनों से सामाजिक समता की संभावना को उभारने का प्रयत्न कर रहे हैं। आज यह सभी का प्रयास है कि प्रतिबन्धों के बावजूद भी सामाजिक समता निकले। यह सम्बन्ध कैसे जुड़े इसके लिए विद्वान मानते है कि समता को अध्यात्म से जोड़ने पर भारतीय विचारों का समाज से सबन्ध बनाने में सहयोग मिलेगा। परन्तु यदि यह लगाव यथार्थ नहीं होगा तो दुराव एवं संघर्ष बढ़ेगा। अतः भारतीय चिन्तन से भी समता के विकास की गुंजाइश है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाज एवं व्यक्ति तथा भारतीयदर्शन

(प्रो० उपाध्याय ने समाज, व्यक्ति तथा भारतीय सोच पर कई गोष्ठियां करायी थीं। उनमें आगतविचारों के आधार पर जो प्रतिश्रुतियां आयीं उनका विश्लेषण उनके स्वयं के भावों द्वारा निम्नलिखित प्रकार है। यह क्रान्तिकारी चिन्तन विचारार्थं प्रस्तुत है।)

'व्यक्ति, समाज और सम्बन्ध' विषय पर आयोजित संगोष्ठी की सफलता इसमें है कि इसके द्वारा वे प्रश्न उभर कर आये, जो आधुनिक सन्दर्भ के हैं, और जिनके विश्लेषण या समाधान में परम्परागत भारतीय दर्शनों को प्रायः अप्रासंगिक मान लिया जाता है। इसकी सफलता का एक कारण यह भी है कि इस संगोष्ठी में परम्परागत शास्त्रों के विद्वानों ने, यहाँ तक कि भौतिक विज्ञान के विद्वानों ने भी भाग लिया। अधिकांश विद्वानों ने निबन्ध लिखे और प्रायः सभी ने खुलकर विचार-विमर्श में भाग लिया।

यद्यपि व्यक्ति और समाज की समस्या पर इस गोष्ठी में विशेष कर बौद्ध दृष्टि से ही विचार किया गया, किन्तु अन्य भारतीय दर्शन भी इस प्रसंग में अछूते नहीं रहे। क्योंकि जीवन की आधुनिक समस्याओं पर **समाजविज्ञानों का बौद्धदर्शन** के साथ संवाद क्या सम्भव है? इस पर सम्पूर्ण प्रश्न के सन्दर्भ से विचार-विमर्श में दो बातें कही गयीं। प्रथमतः यह कि इस प्रसंग में बौद्धों का दार्शनिक प्रस्थान ही समस्या के समाधान में अधिक सक्षम है। द्वितीयतः यह कि सामाजिक प्रश्नों के समाधान में बौद्धदर्शन को अन्य भारतीय दर्शनों के सहयोग की अपेक्षा है, विशेषकर अद्वैत वेदान्त की।

गोष्ठी में प्रारम्भ से अन्त तक इसका पक्ष प्रतिपक्ष खड़ा रहा कि बौद्धदर्शन में वे कौन-से जीवन्त तत्त्व हैं जो आधुनिक सामाजिक समस्याओं के समाधान में सक्षम हो सकेगें। एक पक्ष में जो विचार प्रकट किये गये, उसके मुख्य मुद्दे ये हैं—'बौद्धदर्शन का लक्ष्य निर्वाण है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जबकि उसके विरोध में सामाजिक चिन्तन भौतिक एवं लोकमूल्यात्मक हैं **(प्रो० रामचन्द्र पाण्डेय)**। दोनों में भेद बताते हुए कहा गया कि समाजशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य सामाजिक प्राणी है, जबकि बौद्धदर्शन मनुष्य को समाज से ऊपर उठाता है **(डा० वैद्यनाथ सरस्वती)**। यह भी कहा गया कि अहंवादी व्यक्तिवादी अवधारणा समाज वैज्ञानिकों का है, उसका बुद्ध के करुणामय धारणाओं से मेल बैठाना किसी तरह सम्भव नहीं है। इसी प्रकार आधुनिक समष्टिवादी धारणा जो युद्ध, आक्रमण, अधिनायकवाद एवं निरकुंशता आदि का समर्थन करता है, उसको बुद्ध के साथ जोड़ना उचित नहीं होगा **(प्रो० मुकुट बिहारी लाल)**।

व्यक्ति और समाज की आधुनिक अवधारणा की कोटियों में विचार प्रस्तुत किये जाने पर अधिकांश विद्वानों ने बौद्धदृष्टि को व्यक्तिवादी कहा। कहा गया कि व्यक्ति के विकास या विकार की सम्भावनाएँ व्यक्ति के अन्दर ही हैं। व्यक्ति चित्त के अतिरिक्त स्वतन्त्र सामाजिक चेतना जैसी किसी वस्तु की मान्यता नहीं है। **(प्रो० एस० रिम्पोछे)**। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से भी कहा गया कि बौद्धदर्शन व्यक्तिदर्शन है उसका निर्वाण, अष्टाङ्गिक मार्ग और चार आर्यसत्य सभी व्यक्तिगत हैं यद्यपि बुद्ध के सिद्धान्त सार्वकालिक थे किन्तु उनका केन्द्र केवल व्यक्ति है। उनके अनुसार बुद्ध का दृष्टिकोण वस्तुवादी नहीं था, इसीलिए उन्होंने मनुष्य को सर्वोपरि माना, और चराचर के साथ उसके सम्बन्ध की ओर ध्यान नहीं दिया **(श्री वी० के राय)**।

व्यक्तिवादी होने के कारण ही **जैक्सन** द्वारा बौद्धदर्शन के महत्त्व को प्रस्तुत किया गया। उनके पक्ष को समर्थित करते हुए कहा गया कि व्यक्ति को सामाजिक ढाँचे के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इसके लिए अपेक्षित है व्यक्ति स्वरूप का चिन्तन, जो बौद्धदर्शन की विशेषता है। समाजशास्त्र द्वारा अन्तर्वैयक्तिक निरीक्षण-परीक्षण मात्र ही सम्भव है। व्यक्ति स्वरूप की अभिव्यक्ति समाजशास्त्रियों के पास नहीं है, जबकि बौद्धदर्शन की मान्यता है कि सामाजिक-सांस्कृतिक स्वायत्तता के अन्तर्गत मानव व्यक्ति की स्वतन्त्रता सम्भव नहीं है **(डॉ० राजेन्द्रप्रसाद पाण्डेय)**।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपर्युक्त ऐकान्तिक व्यक्तिवादी पक्षों से भिन्न एक यह पक्ष था कि व्यक्तिवाद या समष्टिवाद की ऐकान्तिकता का सिद्धान्त मूल बौद्धदृष्टि के अनुकूल नहीं है। उसके अनुसार ऐकान्तिक रूप में व्यक्तिवाद एवं समष्टिवाद बौद्धमत में मिथ्या दृष्टियाँ हैं। दोनों अन्तों का परिहार ही सम्यग् दृष्टि है **(प्रो० कृष्णनाथ)**। बौद्धों के समष्टिवादी पक्ष को पुष्ट करते हुए कहा गया कि बुद्ध की गहन मानववादी दृष्टि उनके समाजदर्शन की अन्तर्वस्तु को निर्धारित करती है **(डॉ० प्रतापचन्द्र)**। यह भी कहा गया कि मानव व्यक्तित्व के निर्माण में आंशिक रूप में भी नित्यतावाद का प्रभाव न होने के कारण बौद्ध दार्शनिकों को इसके लिए अधिक अनुकूलता है कि वे सापेक्षता के आधार पर व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों का विश्लेषण कर सकें। व्यक्ति सम्बन्धी सापेक्षता का सिद्धान्त समाज के परिवर्तनशील सम्बन्धों को आकलित करने एवं उन्हें ग्रहण करने में अधिक सक्षम है **(प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय)**। बौद्धदर्शन के वस्तुवादी एवं अवस्तुवादी सभी मुख्य दार्शनिक प्रस्थानों का विश्लेषण करके देखने से ज्ञात होता है कि व्यक्ति और समाज दोनों पर ही सापेक्षता का सिद्धान्त लागू है, जिसकी व्याख्या प्रज्ञप्ति, प्रज्ञप्तिसत्, संवृतिसत् एवं अन्योन्याधिपतित्व आदि के द्वारा की जाती है। इस प्रकार जैसे व्यक्ति पुद्गल अन्य सापेक्ष एवं प्रज्ञप्तिसत् है, वैसे ही समाज की भी व्यावहारिक सत्ता परस्पर सापेक्ष होकर प्रज्ञप्त होती है **(पं० रामशङ्कर त्रिपाठी)**।

बौद्ध चिन्तन में प्रारम्भ से ही पदार्थों के सम्बन्ध में उसका दार्शनिक स्वरूप रहा है अन्योऽन्यापेक्षवाद। यह प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त का प्रतिफलन है। इसके व्यापक प्रभाव में समाज की व्याख्या अछूती नहीं रह सकती। इसीलिए इस गोष्ठी के जो विद्वान बौद्ध सन्दर्भ में व्यक्तिवादी मान्यता के पक्षधर थे और समाज को प्रमुख कारण मानने के पक्ष में नहीं थे, उन्होंने भी व्यक्ति के विकास या विनाश में समाज को सहायक, निमित्त या सहयोगी के रूप में मान्यता दी। उन्होंने भिक्षु व्यक्ति और संघ के सम्बन्ध को एक दूसरे पर निर्भर, परस्पर सापेक्ष और प्रतीत्यसमुत्पन्न स्वीकार किया **(आचार्य सेम्पादोर्जे, प्रो० एस० रिम्पोछे)**।

बौद्धदर्शन व्यक्ति के समाजानुरोधी विकास के लिए अवसर इसलिए प्रदान करता है कि उसमें आत्मदृष्टि और नित्यता के विरोध में क्षणिकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का सिद्धान्त मान्य है। क्षणिकता का सिद्धान्त व्यक्ति के महत्त्व को खड़ा कर सकता है। इस स्थिति में व्यक्ति बुद्धि और नैतिक आचरण के आधार पर ऊपर उठ सकता है। इसीलिए वह निवृत्तिवादी भी नहीं है, क्योंकि मनुष्य परस्पर एक दूसरे के आधार पर ही नैतिक या अनैतिक होता है। इस प्रकार निषेधात्मक दृष्टि से ही बौद्धों ने व्यक्ति और समाज की स्थिति को स्वीकार किया और इसके लिए शाश्वत नैतिक गुणों को आधार बनाया **(प्रो० बी० वी० किशन)**।

व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर चर्चा करने के पहले यह आवश्यक है कि बौद्ध सन्दर्भ में उनके अस्तित्व के स्वरूप एवं स्तर को समझा जाय। दोनों ही संवृति सत्य हैं, पारमार्थिक सत्ता दोनों की नहीं है **(श्री रामशंकर त्रिपाठी)**। किञ्चित् परिवर्तन के साथ इससे मिलते-जुलते विचार प्रायः सभी विद्वानों के हैं। व्यष्टि एवं समष्टि एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है **(डॉ० महेश तिवारी)**। समष्टिव्यष्टि सम्बन्धों के पीछे विशेष दृष्टियों का अभ्युपगम है, इस स्थिति में इस सम्बन्ध की सम्पूर्ण चर्चा प्रपञ्च भाषा में की जाती है **(डॉ० रामचन्द्र पाण्डेय)**। व्यक्ति एवं समाज दोनों अनुपलम्भ एवं असत् हैं। दोनों की व्यावहारिक सत्ता महाकरुणा पर आश्रित है **(डॉ० लालमणि जोशी)**। समष्टि तात्त्विक नहीं, नाममात्र एवं भ्रान्तिमात्र है **(डॉ० हर्षनारायण)**।

उपर्युक्त विचारों में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनका प्रयोग किसी न किसी तरह बौद्धग्रन्थों में मिलता है। जो वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करते हैं यह विचारणीय है, इसके अनेक कारण हैं। जो वास्तविक नहीं है, वह माया है, वह अलीक है, भ्रम है, तुच्छ है, यह धारणा अन्य भारतीय दर्शनों में प्रचलित है। उसका भी कम या अधिक प्रभाव इन प्रतिज्ञा वाक्यों के पीछे हो सकता है। किसी भी स्थिति में इसका निर्णय लेना ही होगा कि बहुप्रचलित एवं शास्त्र व्यवहार का सामान्य शब्द संवृतिसत्य से अस्तित्व की जो धारणा बनती है, वह व्यक्ति और समाज की वर्तमान समस्याओं के समाधान के लिए कितना सक्षम आधार है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बौद्ध दृष्टि से सत्य की अवधारणा की समीक्षा की जाय।

गोष्ठी के प्रायः सभी विद्वानों ने व्यष्टि और समष्टि की सत्ता समान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तर की है, इस मत को प्रगट किया है; किन्तु उन्होंने उसे संवृत्ति सत् या व्यावहारिक सत्ता आदि शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त किया है। इस स्थिति में ऐसा लगता है कि ये विद्वान व्यक्ति और समाज को परमार्थ की अपेक्षा एक निम्न स्तर की सत्ता या तुच्छता प्रदान कर रहे हैं। इस स्थिति में अनायास ही यह भ्रम खड़ा हो जाता है कि बौद्ध भी जीव और जगत एवं व्यक्ति और समाज के प्रति क्या उदासीन और पलायनवादी हैं। इस स्थिति में आधुनिक सन्दर्भ में व्यक्ति एवं समाज सम्बन्धी समस्याओं की जटिलता को सुलझाने में बौद्ध चिन्तन की प्राथमिकता एवं प्रामाणिकता समाप्त होने लगती है।

व्यक्ति और समाज दोनों परमार्थ सत्य नहीं हैं, बौद्धदृष्टि में इस वाक्य का अभिप्राय क्या है ? क्या इस वाक्य से यह निकलता है कि दोनों असत्य हैं ? स्पष्ट है कि संवृत्ति सत्य कभी असत्य नहीं है, सत्य यथार्थता से भिन्न करके समझा नहीं जा सकता। यथार्थता के बोध के लिए एक विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है, जो सर्वसुलभ नहीं है। इसलिए अप्रशिक्षित स्थिति में उस यथार्थता के बोध का एक भिन्न प्रकार होगा, जिसे संवृत्ति सत्य के द्वारा कहा जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि एक ही तथ्य को समझने के लिए संवृति और परमार्थ दोनों प्रकारों से समझा जा सकता है। इस प्रकार ज्ञान के प्रकार-भेद से मात्र मूल्यबोध में भेद आयेगा। इस द्विविध मूल्यबोध को स्पष्ट करने के लिए संवृति एवं परमार्थ का संकेत आवश्यक है।

विद्वानों ने व्यक्ति और समाज का समान स्तर स्वीकार करते हुए भी उनके बीच साध्य-साधन, तात्त्विकता एवं कल्पना आदि के आधार पर स्तर भेद एवं मुख्य-गौण भेद करना आवश्यक माना। इस सम्बन्ध में कहा गया कि व्यक्तित्व की स्वीकृति एवं उसकी इदन्ता की रक्षा एक व्यावहारिक आवश्यकता है जिसके बिना न तो मानव जीवन के वैयक्तिक और न सामाजिक पहलू की व्याख्या की जा सकती है, बौद्ध दृष्टि से व्यक्ति साध्य एवं समाज साधन है दोनों सांव्यावहारिक है परन्तु दोनों में जो मतभेद है वह यह कि रचना है जबकि समाज गौण स्तर की **(प्रो० सिद्धेश्वर भट्ट)**। बौद्धों के पदार्थ शास्त्रीय मान्यता के आधार पर व्यक्ति को पदार्थ की स्वलक्षणता अर्थात् उसकी असाधारणता के आधार पर तात्त्विक और उन असम्बद्ध एवं स्वतन्त्र व्यक्तियों को पुंज के रूप में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाज को स्वीकार करके उनके बीच सम्बन्ध को कल्पना प्रसूत बताते हुए कहा गया कि बौद्ध दृष्टिकोण में तात्त्विक स्वलक्षणता के रक्षार्थ व्यक्ति समाज के बीच सम्बन्ध में तात्त्विकता नहीं मानी जा सकती **(पं० आनन्द झा)**। इसी दृष्टि में व्यक्ति और समाज उसके सम्बन्ध तीनों की तात्त्विकता न्यायवैशेषिक में पूर्ण रूप से, और अद्वैतवेदान्त में कथञ्चित् बनती है।

व्यक्ति की सामाजिक चेतना का विकास अतार्किक ढंग से घटित है। इस मत को स्पष्ट करने के लिए बौद्धों की पदार्थशास्त्री स्थिति प्रस्तुत की गयी। कहा गया कि बौद्ध की 'कुर्वद् रूप' सत्त्व के सिद्धान्त से व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। बौद्ध कहते हैं अणुओं पर दृश्य विश्व की संरचना वासनावश व्यक्त किया करता है। यह उसकी अविचारित रमणीय रचना है जिसमें उसकी तर्कना शक्ति बिल्कुल काम नहीं करती। समाज रचना तथा समाज स्थिति के नियमन में तार्किक प्रक्रिया का विशेष स्थान नहीं है **(डॉ० नारायण शास्त्री द्राविड)**

व्यक्ति और समाज में कौन प्रथम ? इसके समाधान में परम्परागत बौद्ध दृष्टि के अनुसार व्यक्ति की प्राथमिकता को स्वीकार करते हुए भी व्यक्ति और समाज के सुख में अद्वयता तथा उसकी अन्योन्याश्रयता के आधार पर इस प्रश्न के एकतर पक्ष पर आत्यन्तिक जोर देना बौद्ध सम्यग्दृष्टि के विपरीत है, यह बताया गया। किन्तु आज व्यक्तिवादी या समाजवादी पद्धतियों के कारण व्यवस्था में जो महान अन्तर आ जाता है इसलिए प्राथमिकता या श्रेष्ठता की बौद्ध दृष्टि क्या है ? इस पर विचार करते हुए कहा गया कि बौद्धदृष्टि से पद्धति का प्रश्न तो क्रम का प्रश्न है, फल का नहीं। व्यवहार में काम करने का एक सिलसिला बनाया जा सकता है। लेकिन कामकाजी क्रम से व्यक्ति या समाज में एक या दूसरे पर आत्यन्तिक बल नहीं पड़ता, यहां यह या वह का प्रश्न नहीं, दोनों ही का है। सत्वों के चरित में भेद हो सकता है, कोई व्यक्ति तो कोई समष्टि-चरित। इस दृष्टि से उनकी चर्याओं में भेद भी हो सकता है किन्तु इन चर्याओं के भेद से सिद्धि में भेद नहीं। सिद्धि से तो उस अद्वय, युगनद्धदशा को ही प्राप्त करना है जिसमें स्वपर का भेद नहीं है **(प्रो० कृष्णनाथ)**।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्य विद्वानों के निबन्ध से उक्त बात कुछ और स्पष्ट होती है। व्यक्ति तथा समाज की असत्ता की परमार्थता को स्वीकार करते हुए कहा गया कि इस प्रकार व्यक्ति और समष्टि दोनों की एकता का अधिगम होता है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर व्यष्टि-समष्टि के बीच अभिन्नता अधिगम हो सकती है **(डॉ० लालमणि जोशी)** व्यष्टि-समष्टि की अभिन्नता के प्रश्न पर कुछ और विचार भी प्रकट किये गये हैं। समष्टि-व्यष्टि के बीच कोई ऐसा सम्बन्ध होना चाहिए, जिसका आधार परस्पर का आदान-प्रदान हो और उसके आधार पर अधिकार एवं कर्तव्य की व्यवस्था बन सके। माध्यमिक या अन्य बौद्धदर्शन के प्रस्थानों में ऐसा सम्बन्ध सम्भव नहीं हैं, क्योंकि माध्यमिक दर्शन में आदान-प्रदान के लिए कोई स्थान नहीं है। व्यष्टि और समष्टि अन्योय सापेक्ष होने के कारण स्वयं स्वभाव शून्य है। सर्वदृष्टिप्रहाण के द्वारा उनके बीच दृष्टि सापेक्षता समाप्त हो जाती है। वेदान्त और माध्यमिक दोनों दृष्टि प्रहाणवादी हैं, माध्यमिक सर्व-शून्यता के द्वारा और वेदान्त अपरोक्षानुभूति से। इस स्थिति में कहा गया कि बौद्धों के अनुसार समष्टि का अमना कुछ नहीं है। वेदान्त के अनुसार समष्टि में वह सब कुछ है जो व्यष्टि उसमें आधान करती है। पर वह इन आधान की गयी बातों को अतिक्रान्त करके व्यवस्थित है।

वेदान्त में एक आधार है उसको केन्द्रित करके व्यष्टि-समष्टि को भलीभाँति समझा जा सकता है। इसी कारण कम से कम व्यावहारिक स्तर पर आदान-प्रदान भी हो सकता है। बौद्धदर्शन विशेषतः माध्यमिक दर्शन के पास ऐसा कोई आधार नहीं है। इस तरह अकेले बौद्धदर्शन व्यष्टि समष्टि की आधुनिक समस्या पर उतना विशद प्रकाश नहीं डाल सकता, जितना माध्यमिक अद्वैत वेदान्त के सम्मिलित समन्वित दर्शन से **(डॉ० रामचन्द्र पाण्डेय)**। इसी बात को एक दूसरे दृष्टिकोण से भी कहा गया कि बौद्धदर्शन मूलतः एक व्यष्टि दृष्टि प्रधान विचारधारा है। इसलिए व्यक्ति को कर्म सामाजिक ढाँचे के आधार से नहीं समझा जा सकता। उक्त कमी को पूरा करने के लिए पूर्ववर्ती वैदिक दर्शन में जहाँ समष्टि को जीवन का एक अपरिहार्य पक्ष माना गया है, उसे बौद्धदर्शन के साथ जोड़ लेना चाहिए **(डॉ० राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय)**।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपर्युक्त विचारों से सर्वथा भिन्न विचार भी प्रकट किये गये हैं। बौद्धमत की यह सम्भवतः सबसे बड़ी विशेषता है कि इसके अनुसार व्यक्ति एवं समाज की निःस्वभावता को ध्यान में रखकर ही उनकी सत्ता और महत्ता का समर्थन हो सकता है। ऊपर से देखने पर यह कथन विरोधपूर्ण अथवा पैरोडाक्सिकल प्रतीत होता है। परन्तु परमार्थ को भुलाकर सिर्फ व्यवहार की दृष्टि से व्यष्टि एवं समष्टि पर परिसंवाद करना भौतिकवादी अथवा लोकायातक व्यापार के समान होगा। बौद्ध अनीश्वरवादी एवं अनात्मवादी है। इस मत में सभी प्राणियों की समानता एवं अखण्ड एकता के आधार हैं सभी प्राणियों की १-अनात्मता २-नश्वरता त्याग प्रधान इस श्रमण धर्मदर्शन का आदि और अन्त संसार है क्योंकि यही उसका बोधिमण्ड है और यह संसार ही उनका बुद्धक्षेत्र है। ज्यों-ज्यों बोधिसत्त्व का चित्त परिशुद्ध होता है त्यों-त्यों बुद्धक्षेत्र की परिशुद्धि होती है **(डॉ० लालमणि जोशी)**।

बौद्धदृष्टि में व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्ध की संभावना पर विद्वानों ने विस्तार से विवेचन किया है। व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध उसके कर्म से निश्चित होता है। इसी आधार पर बुद्ध देशना में मानव प्रामाणिकता को मान्यता मिली है **(डॉ० राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय)**। कर्मवाद के आधार पर ही बौद्धों ने सारे नैतिक मूल्यों को विकसित किया। उनके व्यावहारवाद का मूल्य भी कर्म ही है जो सिर्फ भिक्षुओं तक नहीं, सबके लिए विस्तृत है। इसी के कारण बौद्धों ने कार्यकारणभाव को तार्किक महत्त्व दिया और पुनर्जन्म को स्वीकार कर बुरे को छोड़कर अच्छे को ग्रहण करने का मार्ग प्रशस्त किया **(प्रो० बी०वी० किशन)**। व्यक्तित्व के उत्पाद के अनेक कारण है, व्यक्तियों की विज्ञप्तियों में भी परस्पर कारणता है। व्यक्ति में कुशल या अकुल विज्ञप्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे अन्य व्यक्तियों की विज्ञप्तियों से उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार कार्य कारण के सन्दर्भ में व्यक्ति और समाज एक दूसरे के अधिपति प्रत्यय हैं। इस प्रकार अन्योन्याधिपतित्व या परस्पराश्रयता ही इनके बीच का बौद्ध दृष्टि से सम्बन्ध कहा जा सकता है **(श्रीरामशंकर त्रिपाठी)**।

सम्पूर्ण बौद्धचिन्तन में कर्म, प्रज्ञा और करुणा ही वे मूलभूतत्त्व हैं जिनके आधार पर एक व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध विकसित होता है तथा दूसरी ओर उसी से नीति और धर्म के औचित्य का भी निर्धारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है। व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध सूत्र कर्म है। कर्म मूल से व्यक्ति चित्त का एक अभिसंस्करण है जिसके आधार पर कुशल और अकुशल का संग्रह या निराकरण होता है। कर्म चयन एक स्वतन्त्र प्रक्रिया है। बौद्ध दृष्टि से व्यक्ति अच्छा या बुरा नहीं होता। इस चयन की प्रक्रिया से ही वह अपने या दूसरों को अच्छा बुरा बनाता है। कर्ममूलक कार्य कारण की जिस व्यवस्था में अकुशल व्यक्तित्व बनता है, उसी के अन्तर्गत कुशल व्यक्तित्व के निर्माण का भी मार्ग है। यह मार्ग स्वयं भूत नहीं है। इस प्रक्रिया में इस बात की पूरी संभावना खड़ी हो जाती है कि नैरात्म्य का अनुभव हो, और उसके आधार पर लोक में नयी और निष्कलुष मान्यताओं एवं सम्बन्धों की स्थापना की जाय।

उक्त पृष्ठभूमि में प्रतीत्यसमुत्पाद का एक क्रान्तिकारी दर्शन वर्तमान है जिसे प्रज्ञा या प्रज्ञापारमिता कहते हैं। प्रज्ञा के इस आलोक में यह स्पष्ट होने लगता है कि जीवन में व्यापक विषमता के पीछे कार्य-कारण आदि से सम्बन्धित बहुत सी गलत अवधारणायें काम करती हैं। उन्हीं के घेरे में एक विशेष प्रकार का स्व पर या व्यक्ति समाज से सम्बन्धित मान्यताएँ खड़ी कर ली गयी हैं। प्रज्ञा के इस व्यापक प्रकाश में करुणा अपनी व्यक्तिगत सीमा से उठकर विशाल आयाम ग्रहण कर लेती है। इस परिस्थिति में दुःख की व्याख्या का क्षेत्र केवल व्यक्तियों तक सीमित न रह कर दुःख के उत्पन्न होने की व्यवस्था या परम्परा से सम्बद्ध हो जाता है। उस स्थिति में करुणा और उससे प्रेरित क्रिया-शक्ति व्यक्त्याधारित (सत्त्वालम्बना) नहीं रह जाती, प्रत्युत धर्मालम्बना (नियमाश्रित या प्रवाहाश्रित) हो जाती है। आगे चल कर वह अनालम्बना या सहज होकर उसका करुणाधारित कर्मक्षेत्र अतिविस्तृत एवं अत्यन्त उदार हो जाता है। इस स्थिति में अव्याहतसर्जनशीलता का उदय होता है, क्योंकि एक ओर वहाँ की प्रज्ञा अमला एवं उत्तरोत्तर सर्वग्राही होती जाती है और उसके साथ दूसरी ओर करुणापूर्ण सीमाओं और निमित्तों को तोड़कर व्यापक रूप में प्रवाहित एवं क्रियाशील होती जाती है। इस स्थिति में निर्वाण की व्यक्तिगत सीमा समाप्त हो जाती है और जीवन का लक्ष्य परार्थ हो जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति और समाज का विलोप नहीं होता, प्रत्युत उनसे सम्बन्धित पुरानी अवधारणाओं के स्थान पर नये आदर्श और उसके अनुसार नया विराट आयाम प्राप्त होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपर्युक्त वक्तव्य से इस संगोष्ठी के उन सभी विचारों का प्रतिनिधित्व होता है जो इस पक्ष के उपस्थापक थे कि बौद्धदर्शन न केवल व्यक्ति समाज की समस्याओं के समाधान में सक्षम है, प्रत्युत उसके लिए चिन्तन की नयी एवं श्रेष्ठ दिशा प्रदान कर सकता है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण गोष्ठी का विषय था 'भारतीय चिन्तन परम्परा में सामाजिक समता का स्वर'। कहना नहीं है कि व्यष्टि-समष्टि से सम्बन्धित विचार का सामाजिक समता के प्रश्न से घनिष्ट सम्बन्ध है। व्यष्टि-समष्टि के बीच घनिष्ट सम्बन्ध है, इसे न केवल आधुनिक विद्याओं के विशेषज्ञों ने बल्कि परम्परागत शास्त्रों के वैदिक-अवैदिक धाराओं के विद्वानों ने भी स्वीकार किया। यहाँ तक कहा गया कि बौद्धमत में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार न करते हुए भी व्यष्टि-समष्टि रूप है यह सिद्धान्त उपपन्न होता है, **(डॉ० शान्तिभिक्षु शास्त्री, श्री रमाशंकर त्रिपाठी)** आदि। यह भी कहा गया कि व्यक्ति का समष्टि में विलयन होता है, वे दोनों परस्पर सापेक्ष एवं समप्रधान है **(पं० सुधाकर दीक्षित आदि)**। यह ठीक है कि व्यक्ति एवं समाज से सम्बन्धित चिन्तन की आधुनिक अवधारणा से ये विचार भिन्न पड़ जाते है, क्योंकि आधुनिक चिन्तक तथ्य या तत्त्व की दृष्टि से व्यक्ति समाज की द्वैतसत्ता को अंगीकार करके विचार करता है, जबकि सभी प्रमुख परम्परागत चिन्तन अद्वैत तत्त्व या तथ्य में पर्यवसित होने लगते हैं।

किसी भी स्थिति में भारतीय चिन्तन के सन्दर्भ में व्यक्ति समाजानुरोधी है, इसलिए उनके बीच आदान-प्रदान की प्रभूत सम्भावनायें हैं इस तथ्य को प्रायः सभी विचारधारा के विद्वानों ने स्वीकार किया। किन्तु इस निष्कर्ष के परीक्षण के लिए यह आवश्यक होगा कि उनकी मीमांसा उन व्यावहारिक गुणों एवं मूल्यों के सन्दर्भ में करें जिनका विकास व्यक्ति और समाज में होना चाहिए, जैसे समता, स्वतन्त्रता, एकता आदि। इस दृष्टि से सामाजिक समता पर विचार करने का महत्त्व बढ़ जाता है।

यह प्रश्न बहुत उभर कर आया कि क्या भारतीय चिन्तन में समतावादी दर्शन होने की अर्हताएँ हैं। एकमत के अनुसार ऐसे दर्शन के लिए अपेक्षा है कि वह सभी सत्यों को मानवसत्य और व्यक्ति को समाज साधन के रूप में स्वीकार करें। इस मत के अनुसार व्यक्ति को स्वतन्त्रता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और उसका स्थायित्व स्वीकार करना आवश्यक होगा, जिनके बीच अन्योन्याश्रय एवं अन्योन्य सम्बन्ध व्याख्यापित हो सकें। किन्तु भारतीय दर्शनों द्वारा इन अर्हताओं के आत्मगत करने में सबसे बड़ी बाधा रही है उनके द्वारा दो सत्यों के सिद्धान्त का अंगीकार करना। परमार्थ सत्य एवं व्यवहार सत्य ये दोनों अन्तर्विरोधी हैं। ये दोनों सत्य दो सर्वथा स्वतन्त्र दो संसारों का रूप लेते हैं, जिनमें किसी प्रकार का संचार, समागम एवं संव्यवहार (कम्यूनिकेशन) सम्भव नहीं है **(डॉ० हर्षनारायण)**। इस वक्तव्य में जितनी मात्रा में तथ्य है उतनी में इस बात की गुंजाइश खड़ी हो जाती है कि सिद्धान्त के रूप में आध्यात्मिक स्तर पर समता की बात की जाय, और उसके ठीक विपरीत वास्तविक जीवन में व्यवहार के स्तर पर विषमता का पोषण किया जाय। इस प्रकार इन दो सत्यों के आधार पर एक ही जीवन में तात्त्विक एवं आध्यात्मिक समता और व्यावहारिक एवं बाह्य विषमता के बीच बेमेल तालमेल बैठा लिया जाता है।

भारतीय दर्शनों का प्रधान स्वर व्यक्तिवादी है। इस बात को ध्यान में रखकर इस प्रश्न पर दूसरे प्रकार से भी प्रकाश डाला गया। समता किसी व्यक्ति का स्वभाव नहीं, समाज का स्वभाव है। समता सामाजिकता का अन्यतम मूल्य और आदर्श है। मनुष्य में बौद्धिकता और सामाजिकता के विकास के अतिरिक्त सम्मान की प्रवृत्ति का भी विकास होता है जो पर के बिना नहीं होता। इसलिए आत्मसम्मान और परसम्मान सामाजिक स्तर पर मानव स्वभाव के अंग बनते हैं। सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में सम्मान की भावना ही कर्म की दृष्टि से नैतिकता कही जाती है। यह भी कहा गया कि मनुष्यों में समता का विकास उसके आन्तरिक स्वतन्त्रता से ही प्रादुर्भूत है। स्वतन्त्रता का गुण समता में अनुस्यूत है। व्यक्ति के सम्मान के पीछे जो सिद्धान्त है, वह यह है कि प्रत्येक मानवात्मा स्वयं ही अपना अन्तिम मूल्य है **(प्रो० राजाराम शास्त्री)**। इस समस्या पर प्राचीन चिन्तन से आधुनिक चिन्तन का भेद स्पष्ट करते हुए यह भी कहा गया कि प्राचीन भारतीय दर्शन और साधना में आन्तरिक एवं आध्यात्मिक समता पर ज्यादा बल दिया गया है और आधुनिकदर्शन और साधना में सामाजिक और बाह्य समता पर बल है। वास्तव में समता दृष्टधर्म है। अदृष्ट नहीं। वह अनुभवगम्य एवं परीक्षण योग्य है। समता सिर्फ मनुष्यता के सामान्य गुण के रूप में नहीं बल्कि व्यवहार में जरूरी है **(प्रो० कृष्णनाथ)**।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार समता की अवधारणा के सम्बन्ध में भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण में जो अन्तर है और भारतीय चिन्तन में दृष्टिगत एवं व्यवहार गत जो बाधायें हैं, उन्हें विद्वानों ने विचारार्थ प्रस्तुत किया है। दो सत्यों की मान्यता के आधार पर जो परमार्थ और व्यवहार के बीच का विरोध बताया गया, उसका विश्लेषण करते हुए शैवशाक्ततन्त्र एवं वैष्णवतन्त्रों के उदारवादी दर्शन और व्यवहार की मीमांसा की गयी। तन्त्र साहित्य के विद्वानों ने भी स्वीकार किया कि तन्त्र दर्शन अन्य भारतीय दर्शनों का अपवाद नहीं हैं जिनके आधार पर समता का कोई लोकव्यवस्थापक स्वरूप उभरता हो। परन्तु इस सम्बन्ध में तान्त्रिक और वैदिक परम्परा में कोई मौलिक अन्तर अवश्य था, जिसके आधार पर उन्होंने मोक्ष को भोग मोक्ष का सामरस्य और सभी वर्णों एवं देवताओं में समता की घोषणा की **(डॉ० नवजीवन रस्तोगी)**। वैष्णव पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा गया कि शूद्र के लिए यद्यपि रामानुजाचार्य एवं शंकराचार्य में भेद नहीं है फिर भी इतना तो है ही कि वैष्णव तन्त्रों में स्त्री, शूद्रों के लिए भक्ति एवं शरणागति के द्वार का उद्घाटन किया गया। इतना होते हुए भी सामाजिक विषमता को दूर करने की दिशा में कोई सफलता नहीं मिली। इस बात का प्रमुख कारण यह है कि ये सिद्धान्त मन्वादि-स्मृतियों का स्थान नहीं ले सके। इसके विपरीत परवर्ती काल में वे तान्त्रिक मन्वादि से अपने को अविरोधी स्थापित करने में लग गये **(डॉ० अशोक कुमार कालिया)**।

तान्त्रिक दर्शनों में द्वैतवादी या अद्वैतवादी सभी ने वेदान्त के मायावाद को अस्वीकार करके स्वातन्त्र्य, समता और व्यक्ति के आत्म प्रत्यभिज्ञान के सिद्धान्त को स्थापित किया। इस स्थिति में यह कहा जा सकता है कि तान्त्रिकों ने दो सत्यों के विरोध को यथासंभव दूर करने का प्रयास किया। श्रमणविद्याओं के विद्वानों का इस प्रश्न पर कुछ भिन्न मत है। एक ओर तो वे तात्त्विक शून्यता या अनैकान्तिकता के सिद्धान्त से जोड़ते हैं। जो है वह प्रतीत्यसमुत्पन्न है, शून्यता उसका निषेध नहीं करती, प्रत्युत उसकी स्वभावसत्ता का निषेध करती है। इस विधि से जगत का त्याग नहीं संग्रह किया जाता है, जगत में दुःख है इसलिए करुणा उत्पन्न होती है, वह जगत के सम्बन्धों को जोड़ती है। समता का कोई तात्त्विक अस्तित्व नहीं, बल्कि विषमता का अभाव है **(श्रीरामशंकर त्रिपाठी)**। जैन दृष्टि से कहा गया कि समता का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मूल आधार व्यक्ति का स्वातन्त्र्य और सामान्य की अनुभूति है। विशेष की निरपेक्ष अवधारणा विषमता की जननी है। अनेकान्त की सापेक्षता व्यक्ति समाज के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है और समता के लिए अवसर प्रदान करती है (डा० गोकुल चन्द्र जैन)। जैन-बौद्ध दोनों ही यतः सृष्टि में मानव का सर्वश्रेष्ठ महत्त्व स्वीकार करते हैं, इसलिए उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार करने में उन्हें अधिक कठिनाई नहीं है।

समता से सम्बन्धित विचार विमर्श के प्रसंग में वर्णाश्रमधर्म के पक्षपाती विद्वानों ने भी अपना शास्त्राधारित मत प्रस्तुत किया। कहा गया कि वर्णाश्रम के अनुसार अपने अपने विहित कर्मों को करना ही समाज व्यवहार है। अधिकारों के अतिक्रमण से ही वैषम्य बुद्धि उत्पन्न होती है। समत्वदृष्टि भावना बल से उत्पन्न की जाती है। इसलिए उसमें वर्णाश्रम धर्म कहीं बाधक नहीं होना। पारमार्थिक दशा की समता दृष्टि किसी प्रकार व्यावहारिक नहीं है और समता की व्यावहारिक स्थिति पारमार्थिक दृष्टि का बाधक भी नहीं है। कहा गया कि इस व्यवस्था के लिए मीमांसा दर्शन की सरणी ही उपयुक्त है और व्यवहार में यदि कुमारिल भट्ट का अनुसरण किया जाय तो जगत जीव के सम्बन्ध में मिथ्यावादी वेदान्त भी इसमें कदाचित् सहायक हो सकता है किन्तु अनात्मवादी, शून्यवादी बौद्धदर्शन तो कथमपि नहीं।

मीमांसा दर्शन समतावाद के अधिक समीप इसलिए है कि वह इतिकर्तव्यता का निर्धारण कर वर्णाश्रम धर्म के परिपालन में लोगों को नियत करता है और समाज में वैषम्य बुद्धि उत्पन्न नहीं करता। इस मत में शास्त्रसम्मत कर्तव्यों का पालन ही भारतीय संस्कृति है (पं पट्टाभिराम शास्त्री)। इस पक्ष को एक दूसरे प्रकार से भी पुष्ट किया गया। सभी व्यक्तियों का आत्मत्वेन दर्शन ही समदर्शन हैं, जैसे घटों में घटत्व का साक्षात्कार। इस प्रकार की समत्व दृष्टि से लोक-कल्याण संभव है। अहन्त्व के रूप में प्रतिभासित उपर्युक्त समत्व आध्यात्मिक हैं, जो व्यवहार काल में प्रतिबद्ध करता हैं, उसका निराकरण करना ही दर्शन शास्त्र का उद्देश्य है। इस प्रकार की समता दृष्टि को छोड़कर यदि केवल समानधर्मता के आधार पर समता खड़ी की जाय तो उसमें समाज की वास्तविक समृद्धि नहीं होगी; मात्र आहार-निद्रा-भय-मैथुनादि प्रवृत्तियों के भोग में समन्वय लाया जा सकता है। पारमार्थिक और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यावहारिक उभयविध समता है। दोनों से ही त्रिवर्ग की समृद्धि बढ़ेगी। सर्वत्र अहन्त्व दृष्टि होने के कारण पक्षपात-राहित्य आदि गुण खड़े होंगे, और इसी प्रकार अहन्त्वभिमानी व्यक्ति संसार त्याग का सुख और आत्मरत हो जाने की संतुष्टि प्राप्त कर सकता है। उदाहरण के रूप में समाज के लिए ऐसे योगियों की अपेक्षा बनी रहती है। इस प्रकार आध्यात्मिक समता और व्यावहारिक समता दोनों से त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है। किन्तु समाज में ऐसी समता नहीं होनी चाहिए जो समाज की व्यवस्था के अनुरूप विकसित गुण और बौद्धिकता के आधार पर समाजिक आर्थिक विषमता को हीन बना कर उसे विलुप्त कर दें। क्योंकि गुणानुरोध से सामाजिक विषमता भी तत्तद् दर्शनों द्वारा प्रतिपादित है **(पं० विश्वनाथ शास्त्री दातार)**।

वर्णाश्रमवादी उक्त दो वक्तव्यों के द्वारा वर्णवादी और वर्ण-व्यवस्थामूलक समस्त विषमताओं का समर्थन करते हुए भी एक प्रकार से सामाजिक समता की सम्भावना को उभारने की चेष्टा की गयी है। इससे इतना तो स्पष्ट ही होता है कि इस विचार के लोग भी अपने प्रतिबन्धों के बावजूद सामाजिक समता की खोज कर रहे हैं। प्रायः सभी विचारकों की एक सामान्य खोज है कि आध्यात्मिक समता को व्यावहारिक समता के साथ जोड़ना चाहिए। यदि यह जुड़ाव होगा तो भारतीय दर्शन की समाज में प्रतिष्ठा बढ़ेगी, सबके प्रति सबकी अच्छी निगाह बनेगी। यदि ऐसा नहीं हुआ तो दुराव और संघर्ष बढ़ेगा **(श्री राधेश्याम धर द्विवेदी)**। कहा गया कि आज समता की भूख जग गयी है। किसिम-किसिम की विशेषता को यह खा रही है **(श्री कृष्णनाथ)**। यह भी कहा गया कि व्यक्ति एवं समष्टि के बीच शाश्वत एवं निरन्तर द्वन्द्व हैं, व्यक्ति पर यदि समष्टि का दबाव न हो तो वह चाहेगा कि उसे अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता मिले। समष्टि की रक्षा के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अलग-अलग स्वार्थों में लगकर धूमायमान न हो जाय। सब लकड़ियाँ साथ-साथ जलेंगी तो समाज के सर्वांगीण विकास की अग्नि प्रज्ज्वलित हो सकती है **(डॉ० कैलाशनाथ शर्मा)**। इस समस्या के समाधान की दिशा में अनेक दार्शनिक सम्भावनायें प्रस्तुत की गयीं। कहा गया कि सांख्य दर्शन और तदनुकूल वेदान्त दर्शन समतावाद के बहुत समीप है **(प्रो० राजाराम शास्त्री)**।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तन्त्रों की ओर संकेत करते हुए कहा गया कि सामाजिक समता को उचित और निर्बाध उपलब्धि के लिए आवश्यक है कि व्यापक मूल्य चेतना के अन्तर्गत ही हम प्रयत्न करें **(डा० नवजीवन रस्तोगी)**। इसके समाधान में बौद्ध और जैन विचारक अपने दर्शन से अधिक आश्वस्त हैं किन्तु उनके समक्ष जीवन के सभी प्रमुख क्षेत्रों में समतावादी जीवनदर्शन के प्रयोग का प्रश्न ज्वलन्त रूप में खड़ा है। कर्मवाद और पुर्नजन्मवाद की उनकी परम्परागत मान्यता को जब तक नया सन्दर्भ नहीं मिलता, तब तक ऐहिकतावादी समता की समस्या उससे अलग-थलग ही पड़ी रहेगी। जिस कर्मवाद के आधार पर बौद्धों ने शाश्वतवाद और गतिहीनता की मान्यताओं का निरास किया और उसके परिणामस्वरूप मानववाद, सर्वसंग्राहक करुणा के सिद्धान्त कुण्ठित-सी पड़ गयी। ईश्वरवादी और आत्मवादी कर्मवाद के समक्ष इस समस्या का समाधान और भी कठिन हो जाता है।

कर्मवाद की इस समस्या पर भी विद्वानों के अनेकबिध मत सामने आये। इस प्रसंग में दृष्टकर्म और अदृष्टकर्म, व्यक्तिकर्म और समूहकर्म तथा उसके व्यक्तिगत फल और सामूहिक फल पर वैदिक और श्रमण सभी दृष्टियों से विचार-विमर्श किया गया। परम्परागत मीमांसा शास्त्र के अनुसार कहा गया कि जिन कर्मों का फल ऐहिक जीवन में ही होता है उनका निर्णायक प्रमाण व्यवहार है, किन्तु उन कर्मों का प्रमाण वेदमूलक होगा, जिनका फल कालान्तर में होगा, फलतः उसका वर्तमान काल में व्यक्ति द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता है **(पं० पट्टाभिराम शास्त्री)**।

कर्मफल को विषमता का आधार मानने की बात का विश्लेषण करते हुए एक यह विचार प्रकट किया गया कि विषमता की भावना मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना न तो सम्भव है और न मानवता के हित में है। किन्तु समाज में जो कृत्रिम विषमता व्याप्त है, वह समाज और शासन की व्यवस्था के फल स्वरूप प्राप्त होती है जैसे लिंग, रंग और बुद्धि आदि की विषमता। किन्तु छूआछूत, ऊँच-नीच, अमीरी-गरीबी आदि व्यवस्था जन्य है। इसके निराकरण का अवश्य प्रयास होना चाहिए। भारतीय दर्शन इस प्रयास में कहीं बाधक नहीं अपितु साधक ही है **(प्रो० बदरीनाथ शुक्ल)**। इस प्रसंग में दृष्टकर्म और अदृष्ट के बीच विभाजन रेखा क्या हो ? इस पर विचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किये गये। कहा गया कि बहुत से ऐसे कर्म हैं, जो एक समय में अदृष्ट कोटि के थे किन्तु अब वे मानव विज्ञान और भौतिक विज्ञानों की नयी जानकारी के साथ दृष्टकोटि में आते जा रहे हैं। उनके सम्बन्ध में अदृष्ट की कल्पना करना और उसके परिणामों को दैवाधीन स्वीकार कर लेना कहाँ तक तार्किक एवं वैज्ञानिक होगा ? इसका ध्यान रखना होगा कि सभी भारतीय दर्शनों ने एक स्वर से दृष्ट के उत्पन्न होने पर अदृष्ट की कल्पना को सर्वथा अप्रामाणिक माना है **(प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय)**। सामूहिक और व्यक्ति कर्म तथा उसके फल पर भी विचार-विमर्श हुआ। यह अनुभव किया गया कि विभिन्न रूपों में सभी भारतीय दर्शनों ने इस प्रश्न पर भी विचार किया है। इसके लिए आवश्यक है व्यक्ति, समाज और राज्य के आधुनिक समस्याओं के सन्दर्भ में उस पर विचार करना और उस दिशा में नवीन वर्गीकरण और स्पष्टीकरण को प्रस्तुत करना।

व्यष्टि-समष्टि के सम्बन्ध या सामजिक समता के सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किये गये हैं, उसकी पृष्ठभूमि में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ विद्वानों में आदि से अन्त तक काम करती रहती हैं। एक यह कि भारतीय दर्शनों को आधुनिक सन्दर्भ के अनुसार अपने को ढालना चाहिए, जिसका फलित यह था कि भारतीय दर्शनों में एक महत्त्वपूर्ण कमी है, जिसकी पूर्ति पाश्चात्य विचारों से कर लेनी होगी। दूसरी प्रवृत्ति यह उभर कर आयी कि इस प्रसंग में चिन्तन की दो धाराओं को जोड़ने का प्रश्न नहीं है, प्रत्युत भारतीय चिन्तन धारा में ही आधुनिक समस्याओं के समाधान की खोज होनी चाहिए। इस प्रक्रिया में स्वाभाविक एवं श्रेष्ठ समाधान की ऐसी सम्भावनायें निहित हैं जो पाश्चात्य देशों में उभरी समस्याओं के श्रेष्ठ विकल्प या समाधान को प्रस्तुत कर सके।

इन गोष्ठियों की सफलता का श्रेय संयोजक **श्री रामशंकर त्रिपाठी** और **श्री राधेश्याम धर द्विवेदी** को है जिन्होंने ऐसे विषयों को विचार का केन्द्र-बिन्दु बनाया, जो जीवन्त समस्याओं से परिपूर्ण हैं, और जिनपर अभी भी भारतीय दार्शनिकों का चिन्तन मुखर नहीं हो रहा है। इसका महत्त्व इसलिए और भी अधिक बढ़ जाता है कि ऐसी गोष्ठियों का आयोजन संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में किया जा रहा है जहाँ अभी भी परम्परागत भारतीय शास्त्रों के अध्ययनाध्यापन की अक्षुण्ण परम्परा चल रही है और आज भी प्रायः सभी प्रमुख भारतीय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चिन्तन की धाराओं के प्रामाणिक विद्वान उपलब्ध हैं। श्री त्रिपाठी जी बौद्ध विद्या के प्रामाणिक विद्वान हैं और श्री राधेश्याम जी का आधुनिक दर्शनों से पूर्ण परिचय है। जीवन और दर्शन की ज्वलन्त समस्याओं से भी ये परिचित हैं और परम्परागत अध्ययनाध्यापन के साथ-साथ नवीन समाधान की दिशा में जिज्ञासु हैं और सचेष्ट हैं। विद्या के विकास की दिशा में इनसे आशा की जा सकती है।

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय

डीन, श्रमण विद्या संकाय
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गाँव एवं परम्परा का ममत्व

मेरा जब कभी ध्यान घर-गाँव की ओर जाता है तो एक प्रकार की लज्जा एवं संकोच का अनुभव होता है। संकोच इस बात का कि जहाँ अपना जन्म हुआ, शिशु काल और बाल्यकाल बीता, जिसके आधार पर बाहर आकर जीवन का विस्तार हुआ और वहाँ यथासम्भव सम्मान, पद आदि प्राप्त किया। उसका क्या लाभ अपनी जन्मभूमि को दिया ?

मनुष्य का स्वभाव सहज एवं सरल होता है किन्तु उसका सम्बन्ध अपने गाँव-घर की मिट्टी के साथ जुड़ा है। वहाँ से उठकर बाहर जाने पर जो भी बड़ा लाभ, बड़ी सुविधा और सम्मान मिले, किन्तु अपने जीवन की सहजता अवश्य ही कम हो जाती है जो प्रयत्न करने पर भी अन्यत्र नहीं मिलती। बाहर जाकर एक प्रकार का कृत्रिम जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उस कृत्रिमता में ही मनुष्य जीता और उसी के घेरे में उसका अन्त भी कर लेता है। जीवन की इन सारी कृत्रिमताओं के बीच मन के किसी कोने में कभी-कभी एक टीस उठती है कि मैं अपनी जगह नहीं हूँ, वहाँ से उखड़ गया हूँ, कहीं दूसरी जगह भटक रहा हूँ। मन में यह भी होता है कि मैं एक प्रकार का शोषक हूँ। क्योंकि गाँव-घर में जन्म लिया, इस लायक हुआ कि बाहर चल-फिर सकूं, तो उसे सदा के लिए भूल ही गया। इतना भूल गया कि उसके प्रति कृतज्ञता का भाव भी नहीं रह गया। यह भी मन में होता है कि जंगल में मोर नाचा किसने देखा ?' अपनों ने तो नहीं देखा।

नयी दुनिया की प्रगति का एक प्रमुख लक्षण है सब प्रकार के केन्द्रीकरण। प्रभुसत्ता, सम्पत्ति एवं वैभव, सुख एवं सुविधा, कला एवं संस्कृति, सौंदर्य आदि। इतना ही नहीं ज्ञान शिक्षा, आचार-विचार का भी केन्द्रीकरण हो जाना है। शोषण का यह भयंकर रूप है जिससे अपने देश में उक्त सभी दृष्टियों से बहुसंख्यक जनता, गाँव और जवार वंचित रह जाता है। गाँव वालों का शहर की ओर ढलाव इधर ४०-५० वर्षों में तीव्र गति से हुआ है जिससे गाँव का अपना परम्परागत स्वभाव ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विनष्ट होता जा रहा। इसके अपराधी अन्य लोगों के साथ शिक्षा और शिक्षक प्रमुख रूप से हैं। उन अपराधियों में मैं अपने को भी गिनता हूँ।

उपर्युक्त पूरे संदर्भ में जब किसी ग्रामीण पण्डित की ओर ध्यान जाता है तो श्रद्धा से उनके प्रति सिर झुक जाता है। अपनी धरती से जो कुछ पाया, वह उसके सहस्त्रगुण अधिक धरती को लौटा देता है। उसकी शिक्षा भी काशी की गलियों में हुई हो और उसको काशी का मोह छोड़ता नहीं हो। जबकि काशी के प्रति उसकी अपार श्रद्धा होती है। ऐसे पण्डित व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष एवं वैदिक कर्मकाण्ड के प्रामाणिक विद्वान होते हैं। उसके बल पर काशी में रहकर भी वे धन और प्रतिष्ठा अर्जित कर सकते हैं। अवश्य ही वहाँ का उपार्जन गाँव से अधिक होता, किन्तु उन्हें गांव का आकर्षण नही छोड़ता। फलत: अपने जीवन के अंतिम साँस तक अपनी धरती की सेवा करते हैं।

मुझे ऐसी अनेक घटनायें याद आती हैं जिससे उनके सम्मान को ठेस पहुँच सकती थी किन्तु उसे क्षमा कर दिया जाता। इतना क्षमा किया जाता कि मन पर उसकी एक छोटी दाग भी नहीं पड़ता। वास्तव में ऐसे पण्डितगण ही अजातशत्रु होते हैं।

पण्डितों को दो प्रकार का ज्ञान अपेक्षित हैं—एक संस्कृत शिक्षण और दूसरा ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड का, ऐसे पण्डित सम्पूर्ण जीवन इन दोनों कार्यों को साथ-साथ निभाते हैं। मुझे ज्ञात है कि पं० राम कुमार जी बलिया, गाजीपुर और बक्सर के एक क्षेत्र में हिन्दू कर्मकाण्ड की धुनी रमाते रहे हैं, मुझे उन शहरों में कर्मकाण्ड की दुर्गति भी ज्ञात है। मैंने भी अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में अपने-अपने यजमानों के बीच कुछ समय तक कर्मकाण्ड कराया था। इसलिए उसकी दुर्गति से मैं पूरी तरह परिचित हूँ। उस क्षेत्र में यज्ञ या श्राद्ध का संकल्प कराना तो दूर था, सामान्य दान, हवन का शुद्ध संकल्प कराने वाले भी दुर्लभ थे। किन्तु मेरे श्रद्धेय पण्डित जी को ही यह श्रेय है कि उन्होंने इसमें व्यापक सुधार किया। कर्मकाण्ड कराना उनकी जीविका नहीं थी, प्रत्युत उनका शौक था। यजमान कितनी दक्षिणा एवं दान देगा, इसका उन्होंने तनिक ध्यान नहीं दिया। हाँ, उन्होंने इस ओर अवश्य ध्यान दिया कि कर्मकाण्ड कितना विशुद्ध रूप से होना चाहिए और विस्तार से होना चाहिए। इन क्षेत्रों में दस मिनट में जो कर्मकाण्ड पूरा किया जाता था उसें शास्त्र के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुसार पण्डित जी ने घंटे दो घंटे तक बढ़ाया। जो एक दिन में पूरा किया जाता था उसे तीन-चार दिनों तक फैलाया। चाहे वैदिक मंत्र हो या पौराणिक, क्या मजाल कि पण्डित जी के सामने किसी उनके शिष्य द्वारा या अन्य किसी के द्वारा उच्चारण में तनिक त्रुटि हो जाय ? उन्हें समस्त कर्मकाण्ड मुखाग्र था और उनके यज्ञ तथा श्राद्ध की विधियां सब देखते और सुनते बनती थी। उनके कर्मकाण्ड में पण्डिताउपन नहीं था, प्रत्युत उनमें कला और सौंदर्य की भी रुचि थी। सौंदर्य की दृष्टि से उनका मण्डप देखते ही बनता था। स्वयं उनका कण्ठ सुमधुर एव बुलन्द था। शिक्षित, अशिक्षित सभी घंटो बैठकर उन्हें सुनते थे।

धर्मशास्त्र और ज्योतिष के साथ-साथ अच्छा कर्मकाण्ड का ज्ञान रखने वाले पण्डित दुर्लभ हैं। काशी का भी वैदिक कर्मकाण्डी केवल कर्मकाण्डी मात्र होता है, वह धर्मशास्त्र और ज्योतिष से अनभिज्ञ ही रहता है। ऐसे कर्मकाण्डी पण्डितों में भाषा की दृष्टि से संस्कृत की भी प्रौढ़ि हो, खोजे नहीं मिलते। पण्डित रामकुमार जी इसे सागोपांग पूरा करते थे। मुझे अनेकों बार का स्मरण है कि काशी के बड़े-बड़े वैदिक कर्मकाण्डियों के बीच पण्डित जी ने अपनी योग्यता से उन्हें कैसे चमत्कृत कर दिया और उन्हें अनुभव कराया कि काशी की गलती का सुधार गाँव के पण्डित द्वारा किस प्रकार होता है।

इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र में भी उनकी अव्याहत गति थी, न केवल फलित में, प्रत्युत गणित में भी। अनेकों बार ऐसा हुआ कि उन्होंने प्रसिद्ध ज्योतिषियों द्वारा बनायी गई जन्म कुण्डली में सुधार किया। अनेकों बार ऐसी जटिल समस्यायें उत्पन्न हुई जिसमें बड़े ज्योतिषियों के बीच मतभेद खड़ा हुआ, किन्तु अन्त में पण्डित रामकुमार उपाध्याय की व्यवस्था ही मानी गयी।

पंडित जी ने विद्या तथा धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं बल्कि सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में भी बराबर अपना योगदान दिया। यही कारण है कि इस क्षेत्र की सामान्य जनता ही नहीं प्रत्युत शिक्षक समुदाय एवं बुद्धिजीवी वर्ग भी उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखता था। पण्डित जी सीमा से अधिक संकोची थे। अपने-अपने धार्मिक कृत्यों और उत्सवों में ले जाने के लिए दूर के या समीप के श्रद्धालु लोग आ जाते, तो वह इनकार नहीं कर पाते थे। स्कूल में शिक्षा देना, घर में ज्योतिष का गणित करना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और दूर-दूर जाकर, दिन-रात जगकर, सब कुछ सामग्री जुटाकर उत्सव और कर्मकाण्ड को भव्य बना देने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते थे। इस संकोच ने ही उनमें अस्वास्थ्य को पैदा किया, जिसे वह निर्मूल नहीं कर पाये। हमें ज्ञात है कि अस्वस्थ व्यक्ति के लिए कर्मकाण्ड उसका दुश्मन है। फिर पण्डित रामकुमार जी की तो बात ही क्या ? जिसने कभी फुर्सत नहीं ली। इस स्थिति में स्वास्थ्य कहाँ तक सुधरता। मेरा कयास है कि वह १५-२० वर्ष पहले ही कालकवलित हो गये। उसका एकमात्र कारण उनका संकोच एवं सेवावृत्ति थी।

उनके देहावसान के दो मास पूर्व वाराणसी में उनसे भेंट हुई। बातचीत के प्रसंग में जब यह बात उठी कि कर्मकाण्ड की जो प्रतिष्ठा पण्डित जी के द्वारा बढ़ी उसका निर्वाह अगली पीढ़ी के द्वारा कैसे होगा ? तो यह निश्चय हुआ कि जगह-जगह पर दो-तीन महीनों का कर्मकाण्ड-शिविर खोला जाय और उसमें स्थानीय लोगों को कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाय। पहला शिविर अपने गाँव में ही हो, इसका भी निश्चय हुआ। मेरे अग्रज पण्डित गोरखनाथ उपाध्याय ने शिविरार्थियों की सेवा सत्कार का भार उठाने का जिम्मा लिया। अब पण्डित जी मिलते तो तिथि मिति का निर्णय हो जाता। उसके पहले ही उन्होंने अपनी जन्म भूमि ही नहीं अपना शरीर भी छोड़ दिया। आज सोचता हूँ कि पण्डित रामकुमार जी अपने शिविर के आयोजनों में व्यस्त एवं व्यग्र रहते। किन्तु हम सब लोगों का दुर्भाग्य कि वह नहीं हो सका।

(प्रो० उपाध्याय जी का गांव के कर्मकाण्ड में रुचि, अपने लोगों के प्रति सामाजिक ऋण का भाव तथा सामान्यजनता के प्रति बिना भेदभाव के करुणाभाव उनकी सहज वृत्ति थी और इसी के कारण वह समता के भाव की ओर मुड़े। यहां तक कि वह वेंदान्त से बौद्ध दर्शन तथा सवर्ण कर्मकाण्ड से दलित कर्मकाण्ड की संरचना में भी प्रवृत्त हुए। यहां प्रो० उपाध्याय के द्वारा स्वीकृत सभी वैदिक, बौद्ध, जैन तथा सिक्ख संस्कारों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। उन्होंने बौद्ध संस्कारों की रचना की थी अतएव वह भी संस्कारों के क्रम में यहाँ प्रस्तुत है—सम्पादक)

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय संस्कार
(वैदिक संस्कार)

संस्कार का अर्थ है, दोष दूर कर उत्तम गुणों का सम्बन्ध करना। अतः संस्कार का अभिप्राय किसी वस्तु को सुष्ठु सुन्दर बनाने से है। जिस प्रकार पत्थर को गढ़कर मूर्ति का रूप दिया जाता है, उसी प्रकार संस्कारों द्वारा मनुष्य का निर्माण किया जाता है। इसलिए विकास की दृष्टि से संस्कारों का विशेष महत्त्व है।

यद्यपि कुछ विशेषतायें जन्मजात होती हैं, परन्तु बहुत-सी विशेषतायें अर्जित की जाती हैं। जन्म से ही मनुष्य विद्वान् और कलाकार नहीं होता, वरंच उसे विद्वान् और कलाकार बनने के लिए साधना करनी पड़ती है। इसी बात को शास्त्रकारों ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासाद् भवेद् विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।।

अर्थात् जन्म से सभी शूद्र हैं, परन्तु संस्कार से मनुष्य द्विज, वेद पढ़ने से विप्र तथा ब्रह्म का ज्ञान होने पर ब्राह्मण बनता है।

'द्विज' का अर्थ है—दो बार जन्म लेनेवाला। जिस प्रकार पत्थर गढ़े जाने पर मूल्यवान मूर्ति के रूप में प्रकट होता है, उसी प्रकार सुसंस्कृत होने पर मनुष्य ब्राह्मण बनता है। संस्कारों के द्वारा आत्मिक गुणों का विकास होता है तथा उसके सामाजिक सम्बन्ध उत्तम होते हैं।

वेलवलकर के शब्दों में—सभी संस्कारों का कर्मकाण्ड यह सूचित करता है कि वैयक्तिक और सामाजिक हित की दृष्टि से मनुष्य पर कुछ नवीन उत्तरदायित्व डाले जा रहे हैं तथा इनका पालन करना उसका प्रधान कर्त्तव्य है। उपनयन विवाहादि संस्कार व्यक्ति के हित के लिए ही न होकर उसका समाज के प्रति उत्तरदायित्व सूचित करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति और समाज का सामंजस्य बना रहता है और दोनों की प्रगति होती है।[१]

---

१. डॉ० वात्स्यायन—भारतीय समाज का संगठन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्री शिव चन्द्र 'प्रगतिवाद की रूप रेखा' में लिखते हैं—'संस्कार हमारे मापने का सबसे बड़ा साधन है। पूर्व की गति-विधियों का अच्छा खाका खींचता है। वही कुछ अच्छे नियमों और मार्गों को हमारे सामने रखता है, जिनके सहारे उन्नति के सोपान पर सहज ही में हम अग्रसर होते हैं। क्या थे ? और कहाँ हैं ? का ज्ञान संस्कार ही कराता है। वह मानव का ऐतिहासिक आधार पृष्ठ ढूँढ़ने का अनेक प्रयत्न करता है।

'संस्कार मनोवैज्ञानिक धरातल से भी अधिक ऊँचा है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी उसका बड़ा महत्त्व है। इसी के अनुसार हमारी बुद्धि में भी परिवर्त्तन होता है। यदि अच्छे संस्कार में हमारा जन्म न हुआ तो हमारी बुद्धि में विकृति की अधिक सम्भावना रहेगी। आलस्य, अकर्मण्यता, ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध और लोभ ये बहुत कुछ संस्कार के जन्मजात दुर्गुण हैं।

'सात्विक वृत्तियाँ तभी आयेंगी, जब हमारा संस्कार सुसंस्कृत होगा। पृथक-पृथक जाति संस्कार भी होता है। चूड़ाकरण, उपनयन, विवाहादि ये भारतीय संस्कार हैं, जो विधिवत् पालन से हमें बहुत कुछ सिखाते हैं। एक स्थायी पूर्वजों का संस्कार होता है, जो उनकी संतति को उसी प्रकार बनाता है। नम्रता, ममता, शान्ति ये सब भी संस्कार पर ही निर्भर करते हैं।

संस्कार मानव-दानव की उपज का केन्द्र है। स्वच्छ भावना, दृढ़ प्रतिज्ञा, पवित्र कृतियाँ, अदम्य-उत्साह, शांत-प्रकृति विचार विन्दु पर रुकना; ये सब पूर्व विहित संस्कार से आविर्भूत हैं और इन्हीं के अनुसार हमारी प्रकृति या प्रवृति में परिवर्तन होते हैं। जिनका संस्कार शुद्ध और श्रेयस्कर होगा तो उनकी संतति का संस्कार भी उच्च और प्रशंसनीय होगा। जाति-संस्कार में कुछ भिन्नता अवश्य रहती है। संस्कार के प्रकरण भेद के अनुसार ही समाज की नींव डाली जाती है। व्यक्तियों के संस्कार अच्छे हुए तो समाज के विधान भी सुन्दर और कल्याणकर हुए अन्यथा समाज के नियम दूषित और हेय हो जायेंगे।[२]

संस्कारों का सम्बन्ध व्यक्ति के भौतिक विकास और पारलौकिक सुख (आध्यात्मिक विकास) दोनों से था। संस्कारों के भौतिक उद्देश्य के सम्बन्ध में डा० राजबली पाण्डेय का कथन है—

---

२. प्रगतिवाद की रूपरेखा (किताब महल, इलाहाबाद)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"संस्कारों का उद्देश्य था—पशु, सन्तान, दीर्घ जीवन, सम्पत्ति, समृद्धि, शक्ति और बुद्धि की प्राप्ति। संस्कार गृह्य-कृत्य थे और स्वभावतः उनके अनुष्ठान के समय घरेलू जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं की भावना देवों से की जाती थी। हिन्दुओं का यह विश्वास था कि आराधना और प्रार्थना के माध्यम से उनकी इच्छाओं और आकांक्षाओं को देवता जान लेते हैं और पशु, सन्तान, अन्न, स्वास्थ्य तथा सुन्दर शरीर और तीक्ष्ण-बुद्धि के रूप में उनकी पूर्ति करते थे। इनमें भौतिक उद्देश्यों की नींव अत्यन्त दृढ़ है और आज भी उन्होंने जन-साधारण के मन पर अधिकार कर रखा है।[३]"

वे आगे कहते हैं—'संस्कारों का अन्य प्रयोजन स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति था।

हारीत संस्कारों के प्रयोजन का वर्णन इस प्रकार करते हैं—ब्राह्म संस्कारों से संस्कृत व्यक्ति ऋषियों की स्थिति को प्राप्त कर उनके समान हो जाता और उनके निकट निवास करता है तथा दैव-संस्कारों से संस्कृत व्यक्ति देवों की स्थिति प्राप्त कर लेता है, आदि-आदि। क्योंकि मोक्ष को जीवन का चरम उद्देश्य मान लिया गया, अतः संस्कारों को भी स्वभावतः उसी की प्राप्ति का साधन समझा जाने लगा। शैल लिखते हैं कि संस्कारों से संस्कृत तथा आठ आत्म गुणों से युक्त व्यक्ति ब्रह्मलोक में पहुँचकर ब्रह्म-पद को प्राप्त कर लेता है, जिससे वह फिर कभी च्युत नहीं होता।

मनु और याज्ञवल्क्य के अनुसार कई संस्कारों का उद्देश्य बीज और गर्भ के दोष को दूर करना था।[४] संस्कारों से ही मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त होता था। अंगिरा के मत से संस्कारों के द्वारा चरित्र-निर्माण एवं ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती थी, यथा—

चित्र कर्म यथाऽनेकै रंगैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकम्।।

---

३. डॉ० राजबली पाण्डेय—हिन्दू संस्कार

४. एवमेनः शमं याति निज गर्भ समुद्भवम् — याज्ञः
गार्भैहोमैर्जात कर्म चौड मौंजी निबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।। मनु २/२७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यों तो सर्व-साधारण में सोलह संस्कार प्रसिद्ध हैं किन्तु भिन्न-भिन्न ग्रंथों में उनकी भिन्न-भिन्न संख्या बताई गई है। मत्स्य पुराण के अनुसार संस्कारों की संख्या अठाइस है, यथा —

द्वाविंशतिस्तथाष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्तिताः।

तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय, यस्त्वात्मगुणवर्जितः ।।

म०५२/१७

इन अठाइस संस्कारों की गणना पन्द्रह जातकर्मादि संस्कार, पंचमहायज्ञ और आत्मा के आठ गुण मिलाकर की गई है।

इस संस्कारों के सम्बन्ध में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने इस प्रकार उल्लेख किया है—व्यास स्मृति में सोलह संस्कारों की गणना इस प्रकार की गई है—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन आधान और श्रौत अग्नि का आधान। दूसरे स्मृतिकारों ने इनमें से कई एक को मिला दिया है। अन्त्येष्टि भी एक संस्कार माना गया है। आंगिरस इनमें से दोनों अग्नियों के आधान, निष्क्रमण और कर्णवेध को निकालकर, इनमें कई यज्ञों का योग कर इनकी संख्या पच्चीस करते हैं। गौतम ने इन सोलह संस्कारों में से निष्क्रमण, कर्णवेध, वेदारम्भ, केशान्त और दो अग्नियों के आधान निकालकर, शेष दस के साथ चार वेदव्रत, पाँच महायज्ञ, सात पाक यज्ञ, सात हविर्यज्ञ, सात सोम यज्ञ तथा आत्मा के आठ गुण (सर्व भूत दया, क्षमा, अनुसूया, शौच, अनायास, मंगल, अकृपणता और अस्पृहा) को मिलकार संस्कारों की संख्या ४८ की है, किन्तु इन संस्कारों के सम्बन्ध में गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्न प्राशन, चूड़ाकरण (मुण्डन), उपनयन, समावर्तन और विवाह तो सभी गिनते हैं। आजकल इनमें पुंसवन को छोड़ शेष प्रचलित भी हैं। ये सभी संस्कार वेद मंत्रों से यज्ञ और पूजा पूर्वक बालक के तेजस्वी और सुसंस्कृत होने की कामना से किए जाते हैं।[५]

जातकर्म में विधि पूर्वक नाल काटते, वृद्धि-श्राद्ध और मातृ का पूजा करते तथा शिशु की जीभ पर मधु आदि औषधियों से 'ॐ' लिख देते हैं। यह सब काम पिता करता है। जन्म से ११ वें या १३ वें दिन

५. स्वामी सहजानन्द सरस्वती—कर्मकलाप।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुभ मुहूर्त्त में **'नामकरण'** किया जाता है। जब शिशु अन्न खाने योग्य हो जाता है तो **'अन्न-प्राशन'** होता है। पहले, तीसरे या पाँचवें वर्ष की अवस्था में किसी तीर्थ, देवस्थान या घर पर ही मुण्डन संस्कार सम्पन्न किया जाता है।[६] इस संस्कार में शिखा छोड़कर शेष केश काट देते हैं। इसी से इसे **'चूड़ाकरण'** कहते हैं।

उपनयन का अर्थ है—गुरु के समीप जाना। यह संस्कार, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का क्रमशः गर्भ से ८-१६, ११-२२ और १२-२४ वर्ष की अवस्था के मध्य अवश्य हो जाना चाहिए। ब्राह्मण बालक का उपनयन पाँच वर्ष की अवस्था में भी होता है। जब ब्रह्मचारी वेदाध्ययन पूराकर घर जाने के लिए अवभृथ स्नान करता था तो उसे **'समावर्तन'** कहते थे। यह विधि भी आजकल उपनयन के साथ ही पूरी कर ली जाती है और 'उपनयन' भी व्यावहारिक न होकर नाटकीय बन गया है। विवाह-संस्कार जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार है, जबकि पति और पत्नी प्रतिज्ञाबद्ध होकर गृहस्थी की गाड़ी खींचने के लिए एक जुट होकर कंधा लगाते हैं। अन्त्येष्टि संस्कार का सम्बन्ध भावी-जीवन से है। इन प्रधान संस्कारों के महत्त्व पर आगे प्रकाश डाला जायगा।

महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी संस्कारों का त्रिविध प्रयोजन स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—'संस्कार में दो प्रकार की वस्तुएँ देखने में आती हैं, एक प्राकृत और दूसरी संस्कृत। प्रकृति ने जिस रूप में जिस वस्तु को पैदा किया उसका सुधार संस्कार है जो तीन प्रकार से होता है—दोषमार्जन, अतिशयाधान और हीनांगपूर्ति।[७]

इससे स्पष्ट है कि संस्कारों की योजना मनुष्य के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से की हुई है और ये संस्कार वैज्ञानिक, आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक आधार पर दृढ़ता से खड़े किए गए हैं। सुसंस्कार के कारण ही समाज में ब्राह्मण को उच्च स्तर प्राप्त हुआ और संस्कार भ्रष्ट होने से दस्यु निम्न स्तर पर पहुँच गए।

---

६. मनु० २/२८-३२

७. बौदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति पृ०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपनयन

संस्कारों में उपनयन एक प्रधान संस्कार है। यह संस्कार उस महत्त्वपूर्ण जीवन की भूमिका है, जिसमें पहुँच कर बालक द्विजत्व को प्राप्त होता है। द्विज मात्र के लिए प्राचीन काल में वेद-शास्त्र का अध्ययन अनिवार्य था। जो लोग उपनीत नहीं होते थे, वे द्विज पद से गिर जाते थे और व्रात्य कहलाते थे।

द्विज का महत्व उसके वेदज्ञ और ब्रह्मचर्य-व्रती होने में था। यज्ञोपवीत उसका प्रतीक है, जो उसके महान् उद्देश्यों और गुणों की सूचना देता है। यज्ञोपवीत के निमित्त लिए जानेवाले सूत की लम्बाई ९६ चौआ (चार अंगुल की नाप) होती है, जो कर्मकाण्ड और उपासना सम्बन्धी हैं, जो चारों वेदों में फैले हुए हैं। छानबे की संख्या, यज्ञपुरुष विष्णु और वेद का प्रतीक बन गया है। इसकी तीन लड़े वेदत्रयी की सूचक हैं। प्रत्येक सूत्र में तीन-तीन धागे बटे होते हैं। ये त्रिसूत्र कर्मकाण्ड के श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र और स्मार्त-सूत्र के परस्पर समन्वय की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। ये त्रिसूत्र-त्रिपदा गायत्री, तीन महाव्याहृतियाँ और तीन अक्षरों वाले प्रणव (ओइम्) का बोध कराते हैं।

यज्ञोपवीत की तीन लड़े-त्रिगुणात्मक संसार में साधना के तीन मार्गों द्वारा तीन ऋणों (देव-पितृ-ऋषि-ऋंण) की मुक्ति पूर्वक तीन आश्रमों के आश्रय में रहकर तीन अनिवार्य कर्म (अध्ययन, यज्ञ, दान) में प्रवृत्त रहने की प्रेरणा देते हैं। ये तीन-तीन सूत्रों वाली तीन लड़े, तीन-तीन गुणों वाले शरीर, वाणी और मन के सामंजस्य से अर्थ-धर्म-काम की साधना का स्मरण कराती हैं। शरीर के तीन गुण—ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-निग्रह और शौच, वाणी के तीन गुण—सत्य, स्वाध्याय और जप तथा मन के तीन गुण—सरलता, धर्म-चिन्ता और तत्त्व-चिन्ता हैं। यज्ञोपवीत के नौ गुंण ब्राह्मण के ९ गुणों के भी प्रतीक माने जाते हैं—ब्राह्मण के ९ गुणों में—सत्य, दया, तप, शौच, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमता और समता की गणना की जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत की तीन लड़ियों में सम्पूर्ण शुभाचार और सम्पूर्ण सद्गुण आरोपित हैं। नौ ही द्रव्य और नौ तक ही तो अंक हैं जिसमें सारा विश्व-प्रपंच समाविष्ट हैं।

चौआ का मापदण्ड चार वेद, धर्म के चार चरण; चार प्रकार की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सृष्टि, अन्तकरण चतुष्टय, यज्ञवेदी की चारों दिशायें, यज्ञ के चार उपकरण (यजमान, होता, मंत्र और सामग्री) और होता-उद्गाता-ऋत्विक-अध्वर्यु के प्रति कर्त्तव्य चेतना को अपने में समेटे हुए है। यज्ञोपवीत यज्ञमय जीवन का प्रतीक है। यज्ञोपवीत की ग्रंथियाँ गोत्र-प्रवर का सूचक होने से उन महान् पूर्वजों का स्मरण कराती हैं, जिनकी अविच्छिन्न परम्परा में हम उत्पन्न हुए हैं। सबके ऊपर ब्रह्मग्रन्थि होती हैं, जिसका अभिप्राय यह है कि द्विजों के सम्पूर्ण क्रिया-कलाप की सीमा ब्रह्म है।

यज्ञोपवीत द्विज की महान् कर्म साधना, उच्चतम व्यक्तित्व, और उसके विकसित जीवन का परिचय-पत्र है, जो आजकल केवल रूढ़ि बन जाने से अपने उद्देश्य को चरितार्थ नहीं करता, फिर भी उसे निपट निरर्थक नहीं कहा जा सकता। यज्ञोपवीत धारण करने से एक प्रकार का आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव की भावना उत्पन्न होती है, जिसके कारण मनुष्य को बुरे कामों से दूर रहने की प्रेरणा मिलती है तथा धार्मिक कृत्य करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। आचार की पवित्रता का आज भी यज्ञोपवीत से सम्बन्ध है। कुछ दिनों पहिले तक यह विश्वास किया जाता था कि यज्ञोपवीत धारण करने वाले सदाचारी तथा शुद्धभाव-विचार वाले होते हैं। बहुत से लोग आज भी यज्ञोपवीत की पवित्र मर्यादा का ध्यान रखते हैं। किसी न किसी रूप में आचार-विचार तथा भावात्मक शुद्धि से यज्ञोपवीत की उपयोगिता आज भी है।

पद्म पुराण में कहा गया है कि पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने यज्ञोपवीत के लिए ही कपास को उत्पन्न किया, अतः यज्ञोपवीत सदा धारण करना चाहिए। द्विज बिना यज्ञोपवीत के और बिना शिखा बाँधे जो कर्म करता है, वह विधि पूर्वक किया हुआ नहीं माना जाता। यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने के बाद ही वैदिक कर्मकाण्ड करने का अधिकार प्राप्त होता है तथा प्रतिदिन ब्रह्म यज्ञं और गायत्री जप करने की अनिवार्यता हो जाती है। यह संसार हजारों वर्ष पूर्व प्रचलित उस समाज-व्यवस्था की याद दिलाता है, जबकि बटु आचार्य के आश्रम में रहते हुए ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन-पूर्व विद्याध्ययन में प्रवृत्त रहता था।

यज्ञोपवीत धारण करने की तीन विधियाँ हैं—

१. उपवीत—बायें कन्धे के ऊपर से दाहिनी बाँह के नीचे धारण किए गए यज्ञोपवीत को उपवीत कहते हैं। हवन, देवकार्य, पाठ-पूजा, जप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वाध्याय, भोजनकाल, गुरुजन और साधु के समीप, गोशाला आदि में उपवीती रहना चाहिए।

२. प्राचीनावीत-दाहिने कंधे से बाँईं बाँह के नीचे धारण किए जाने वाले यज्ञोपवीत को प्राचीनावीत (अपसव्य होना) कहते हैं। श्राद्ध-तर्पण पितृ तथा प्रेत कार्य में इसे धारण करते हैं।

३. निवीत—गले में माला की भांति धारण करना 'निवीत' कहलाता है। ऋषि तर्पण निवीत होकर किया जाता है।

यज्ञोपवीत अत्यन्त पवित्र प्रतीक है। उसकी पवित्रता की रक्षा की भावना से ही मल-मूत्र त्याग करते समय उसे दाहिने कान पर तीन आवृति में लपेट देते हैं।[८] कान आकाश का प्रतीक है। दाहिने कान में मरुत, सोम, इन्द्र, अग्नि, मित्र और वरुण देव का निवास माना गया है, इसी से छींकने, थूकने, जूठा मुँह होने, पतितों से बातचीत करने, झूठ बोलने आदि की दशा में दाहिने कान का स्पर्श किया जाता है।[९]

बिना यज्ञोपवीत के अन्न-जल ग्रहण करने पर प्रायश्चित करने का विधान है। ऐसा होने पर एक दिन उपवास रहकर पंचगव्य का प्राशन करने से दोष निवृति होती है। यदि भूल से बिना कान पर रखे मल-मूत्र का त्याग करे तो गायत्री मंत्र पूर्वक उसकी शुद्धि करनी चाहिए। यज्ञोपवीत के पवित्रता की रक्षा आवश्यक है। प्राचीन काल में स्त्रियां भी यज्ञोपवीत धारण करती थीं, परन्तु बाद में उसकी पवित्रता की रक्षा की भावना से पति ही पत्नी के निमित्त भी यज्ञोपवीत धारण करने लगा। यही कारण है कि यज्ञोपवीत एक साथ एक जोड़ा धारण किया जाता है।

हाथ के कते सूत को दस बार गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित कर यज्ञोपवीत तैयार करना चाहिए।[१०] और यज्ञोपवीत धारण करते समय निम्नांकित मंत्र पढ़ना चाहिए—

'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं, प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रयं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।'

---

८. कर्णस्थ ब्रह्म सूत्रो मूत्र-पुरीषं विसृजति-अग्निवेश्य गृह्य सूत्र २/६/८
९. गोभिल सूत्र २/९०
१०. मदन पारिजात

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यज्ञोपवीत के पुराना हो जाने या टूट जाने पर त्याग करते समय निम्नांकित मंत्र द्वारा उसका त्याग किया जाता है—

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्मत्वं धारितं मया।
जीर्णत्वात्त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यथासुखम्।।

विवाह

हिन्दू विवाह का उद्देश्य काम वासना की तृप्ति नहीं, वरंच हिन्दू की दृष्टि में विवाह एक सामाजिक कर्त्तव्य है जिसके द्वारा प्रजावर्द्धन कर देव-पितर की तृप्ति, परम्परागत धर्म की रक्षा और सामाजिक विकास में सहयोग किया जाता है। विवाह एक धार्मिक संस्कार है, जो इस जीवन के अतिरिक्त पारलौकिक तथा आध्यात्मिक जीवन को भी प्रभावित करता है। हिन्दू-जीवन में विवाह एक उत्तरदायित्व है, जिसकी आवश्यकता पुत्र के लिए है। पुत्र का अर्थ होता है— अपने पूर्वजों को पुंजोनामक नरक-यातना से मुक्त कर सुख पहुँचा सके, वास्तव में वही पुत्र है। गरुड़ पुराण में कहा गया है—

तत्सर्वं आत्मना भुंक्ते दानं वेदविदो विदुः।
पुं नाम्नो नरकात् यस्मात् पितरं त्रायते तु यः।।

प्रेतकल्प-११/३०७

पुत्र पितृ-यज्ञ और अपने शुभ आचरण से परलोक में अपने पितरों को आनंदित करता है। परन्तु यह बात तभी सम्भव है, जबकि पुत्र लोकहितकारी, सदाचारी, श्रद्धाशील और सुशिक्षित हो एवं अपने कर्त्तव्य के प्रति सदा सावधान हो। यदि ऐसा पुत्र नहीं हुआ तो उसको जन्म देने की अपेक्षा न जन्म देना ही अच्छा है। दुराचारी, श्रद्धाहीन पुत्र तो अपने दुष्कर्म से परलोक में भी पितरों को कष्ट ही देता है। श्रेष्ठ सन्तान के लिए श्रेष्ठ माता-पिता का होना जरूरी है। पुत्र पिता का प्रतिनिधि होता है—**'आत्मा वै जायते पुत्रः'** अर्थात् पिता ही पुत्र रूप में उत्पन्न होता है।

हिन्दू-भावना के अनुसार पति और पत्नी दोनों दो नहीं हैं, अपितु वे एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों मिलकर एक गृहस्थी बसाने वाले पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। यह मिलन जीवनभर के लिए होता है, वल्कि इस जीवन के बाद अगले जीवन में भी उस ऐक्य के बने रहने की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कामना की जाती है। पति-पत्नी एक साथ मिलकर ही सारे धार्मिक कार्यों का सम्पादन करते हैं, इसी से पत्नी को 'अर्द्धांङ्गिनी' सहधर्मिणी अथवा धर्मभार्या कहते हैं। कहा है—

अर्द्धः भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य, भार्या मूलं तरिष्यतः ।।

अर्थात् पत्नी आधा शरीर है, वह श्रेष्ठ सखा है और वह अर्थ-धर्म काम का आधार एवं मोक्ष का भी कारण है।

विवाह-काल में पति, पत्नी के समक्ष जिन सात बातों की प्रतिज्ञा करता है, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं—

१. एकमात्र मैं तुमसे प्रेम करूँगा, किसी दूसरी स्त्री से नहीं।
२. अपनी पूरी आमदनी तुम्हारे हाथ में दूँगा।
३. अपने सब कामों में तुम्हारी सलाह लूँगा।
४. यदि तुमसे कोई अपराध भी हो जायगा, तो उसे क्षमा करूँगा।
५. कष्ट पड़ने पर तुमसे अलग न हूँगा।
६. सुख में तुम्हें साझीदार बनाऊँगा और धार्मिक क्रियायें साथ-साथ सम्पन्न करूँगा।
७. तुम्हारी रक्षा और भरण-पोषण करूँगा।

जिस प्रकार पति, पत्नी के समक्ष प्रतिज्ञा करता है, उसी प्रकार पत्नी भी पति के समक्ष प्रतिज्ञा करती है कि मैं तुम्हारे माता-पिता का सम्मान और सेवा करूँगी, तुम्हारे अनुशासन में रहूँगी और तुम्हारे भाई-बहिनों के प्रति ममत्व की भावना रखूँगी आदि। वह कहती है कि हे बुद्धिमान पुरुष! मैं तुम्हें स्वयं बनाये वस्त्रों से बांधती हूँ, जिससे तू मेरा रहे, किसी और का न हो। हे विचारशील पुरुष मैं प्रतिज्ञा कर रही हूँ और तू भी इस सभा में प्रतिज्ञा कर जिससे तू मेरा रहे और किसी दूसरी स्त्री से बातचीत न करे।[११]

---

११. अभि त्वा मनु जातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ।।
अहं वदामि ने त्व्वं सभायामह त्वं वद।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन ।।

अथर्व ७/३७/१,७/३८/४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पति कहता है—

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत्।
पत्नी त्वमसि धर्मणामहं गृहपतिस्तव।।
अथर्व० १४/१/५१

अर्थात् भग, सविता आदि देवताओं ने तेरा हाथ पकड़ाया है, इसलिए तू धर्म से मेरी पत्नी और मैं तेरा पति हूँ।

विवाह-काल में पति-पत्नी शिला पर खड़े होकर और ध्रुवतारे का दर्शन कर उसी प्रकार अपने सम्बन्ध को दृढ़ और स्थिर होने की कामना करते हैं। शास्त्र में पत्नीव्रती और पतिव्रता होने की प्रशंसा की गई है।[१२] हिन्दू विवाह के सम्बन्ध में पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने लिखा है—

'अन्य जातियों की भाँति भारतीयों का विवाह केवल मनमाना सम्बन्ध नहीं, किन्तु एक वैज्ञानिक दृढ़ सम्बन्ध है, जो जन्मान्तर तक भी बना रहता है।

विवाह संस्कार भी अतिशयाधान रूप है, वह स्त्री में दूसरे कुल से सम्बद्ध होने का अतिशय उत्पन्न करता और स्त्री तथा पुरुष दोनों के एक रूप बना देने के कारण वह हीनांगपूर्ति भी करता है जिससे एकरूपता प्राप्त दोनों पति-पत्नी गृहस्थाश्रम चलाने योग्य संतान उत्पन्न करने और यज्ञ-यागादि सम्पादित करने के योग्य बन जाते हैं। पत्नी के देह, प्राण, मन आदि का दृढ़ सम्बन्ध पति के देह, प्राण-मन से जोड़ देना ही इस संस्कार का लक्ष्य है।[१३]

मनुस्मृति में विवाह के आठ प्रकार बताये गए हैं—

१. ब्राह्म (विद्वान, शीलवान्, गुणी, धर्मात्मा और स्वस्थ वर को आमंत्रित कर कन्यादान देना)। २. दैव (यज्ञ में ऋत्विक को वस्त्रालंकार युक्त कन्या देना)। ३. आर्ष (गाय या बैल की जोड़ी लेकर कन्या देना)

---

१२. अस्वर्ग्यमशस्यं च फल्गुकृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रियः।।व्यास

१३. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति पृ०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४. प्राजापत्य (आशीर्वाद पूर्वक कन्या देना) ५. आसुर (धन लेकर कन्या देना) ६. गन्धर्व (वर कन्या का स्वेच्छया विवाह) ७. राक्षस (बलात् कन्या हरणकर विवाह) ८. पैशाच (उन्मत्त या सुप्त होने पर बलात्कार)।

भारतवर्ष में प्राय: ब्राह्म-विवाह का ही प्रचलन है। किंचित् आसुर और गांधर्व विवाह भी होते हैं; जिनको समाज में अच्छा नहीं समझा जाता। हिन्दू सिद्धान्त के अनुसार वही विवाह वैध है, जो सवर्ण या सजातीय या अनुलोम (पति से निम्न वर्ण की पत्नी) हो। प्रतिलोम विवाह (पति से पत्नी का वर्ण ऊँचा होना) निषिद्ध माना गया है। इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तान वर्ण संकर कही गई है। सगोत्र और नाना की ६ पीढ़ी के अन्तर्गत विवाह वर्जित है।[१४]

अन्त्येष्टि

कुछ अन्त्येष्टि की गणना भी संस्कारों में करते हैं क्योंकि वह जन्मान्तर में शुभ फल देने वाला और सद्गति का हेतु होता है। शरीर छूटने पर जीव की निम्नांकित सात गतियाँ होती हैं—

१. ज्ञानयोगी आवागमन के बंधन से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है। वह ब्रह्मरूप हो जाता है।

२. पुण्यकर्मों के फलस्वरूप उत्तम लोकों की प्राप्ति।

३. पाप कर्म के फलस्वरूप नरक की प्राप्ति।

४. उत्तम संस्कारों के फलस्वरूप श्रेष्ठ कुल में जन्म।

५. जघन्य वृत्तियों की प्रबलता से नीच योनियों में जन्म।

६. कर्मानुसार साधारण या नीच कुल में जन्म।

७. अपमृत्यु के कारण उद्विग्नतायुक्त भूत-प्रेत होना।

कर्म से निर्लिप्त रहने के कारण ज्ञानी पुरुष को अन्त्येष्टि की

---

१४. काश्यप, शांडिल्य, भारद्वाज और गौतम गोत्र में सगोत्र विवाह होता है किन्तु एक मूल (निकास या डीह) में नहीं किया जाता। केरल में ममेरी बहन से विवाह का प्रचलन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आवश्यकता नहीं होती किन्तु शेष लोगों को भावी जन्म के संस्कार के लिए इसकी आवश्यकता स्वीकार की जा सकती है। शरीर छूटने पर भी जीव की शरीर के प्रति ममता रहती है किन्तु शव का अग्नि संस्कार हो जाने पर उसकी वह ममता जो उसकी सद्‌गति में बाधक है, दूर हो जाती है।

शरीर का अग्नि संस्कार हो जाने से शरीर के भिन्न-भिन्न तत्त्व अपने पूर्व रूप को प्राप्त कर लेते हैं। शरीर सड़-गल कर प्रदूषण उत्पन्न नहीं करता। कुछ लोग मृतक को जल में प्रवाहित कर देते हैं, जहाँ उसे जीव-जन्तु खा जाते हैं। किसी-किसी समाज में शव को भूमि में समाधिस्थ करने की प्रथा है।

अंत्येष्टि जीवन का अन्तिम आहुति है। यह एक धार्मिक कृत्य है, जिसके द्वारा शरीर अग्नि देव को या अग्नि के माध्यम से भगवान् को समर्पित कर दिया जाता है। अग्नि तत्त्व से ही विश्व में जीवन की उपलब्धि होती और उसमें ही सबका लय भी होता है। ब्रह्माण्ड में अग्नि-तत्त्व सर्वत्र क्रियाशील है, उस क्रिया का रुक जाना ही प्रलय है। वैदिक धर्म में अग्नि देव का संयोग होने से प्राण तत्त्व ऊपर को गमन करते हैं, जिससे जीवात्मा उर्ध्वगामी होता है।

अंत्येष्टि कर्म भावी-जीवन की भूमिका है, इसी से इसकी उपयोगिता है। इसी से मरणासन्न पुरुष के निमित्त भावी कल्याण-कामना से वहाँ भगवान का नाम कीर्त्तन, श्रीमद्‌भगवद् गीता आदि का पाठ किया जाता है। मरणासन्न पुरुष का ध्यान संसार की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया जाता है, ताकि वहाँ का वातावरण सात्त्विक बन सके और जीव की सद्‌गति हो। दान-पुण्य, गोदान, मरणासन्न के मुख में गंगा जल, तुलसी-दल और सोना इसी उद्देश्य से देते हैं कि उसके तमोगुण-रजोगुण की निवृति हो तथा वह सतोगुण से युक्त होकर संद्‌गति को प्राप्त कर सके। मरणकाल में मन की आसक्ति या स्थिति जिधर होती है, जीव उधर ही जाता है। इसी से कहा गया है—**'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'**

संस्कार-हीन पुरुष भ्रष्ट हो जाता है। संस्कार हीन होने से ही बहुत-सी ज़ातियाँ पथ-भ्रष्ट तथा वर्ण संकर बन गई। इसलिए संस्कारों का त्याग नहीं करना चाहिए। सुसंस्कृत पुरुष ही अपने जीवन को ऊँचा उठा सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(बौद्ध संस्कार)

(प्रो० उपाध्याय जब बौद्धधर्म से प्रभावित हुए तथा जीवन के अन्तिम दिनों वे श्रीलंका में बौद्धशिक्षा ग्रहण कर कुछ दिनों तक भिक्षु का जीवन व्यतीत करने लगे तो उन्होंने भारतीय समाज में रहने वाले बौद्धों के लिए एक बौद्ध जीवन पद्धति को छपवाया। जो विस्तृत होने के कारण यहां नहीं दिया जा सकता, पर सारांश यहां प्रस्तुत है।)

बौद्ध होने के लिए निम्नलिखित कृत्य आवश्यक हैं।

पञ्चाङ्ग नमस्कार –

१. पंजो के बल बैठना

२. दोनों पैर के ठेहुनों पर दोनों हाथ की केहुनी सटाना

३. दसों अंगुलियां सटाकर हाथ जोड़ना

४. जोड़े हुए हाथों को ललाट पर सटाना

त्रिशरण –

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स

बुद्धं सरणं गच्छामि, धम्मं सरणं गच्छामि, संघं सरणं गच्छामि

दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि
दुतियम्पि संघं सरणं गच्छामि
ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि
ततियम्पि संघं सरणं गच्छामि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पंचशील –

पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

प्रणाम विधि –

१ दोनों हथेलियों को जमीन पर सटाना

२ दोनों पैरों के घुटने जमीन पर सटाना

३ दोनों हाथ की केहुनी जमीन पर सटाना

४ मस्तक को जमीन पर सटाना

इस प्रकार त्रिशरण और पंचशील ग्रहण कर कोई प्राणी बौद्ध बन सकता है। वह उसके अनन्तर बौद्धविधि से निम्नलिखित प्रकार से संस्कारों को सम्पन्न करेगा।

संस्कार

(१) नामकरण –

माता-पिता शिशु के जन्म के सातवें सप्ताह में अपने घर में, बुद्ध मन्दिर या बिहार में किसी भिक्षु या बौद्धाचार्य से नामकरण संस्कार करायें। यदि घर में कराना हो तो पहले घर की अच्छी तरह सफाई करके जिस स्थान पर संस्कार होना है, वहां कुछ ऊँचाई पर भगवान् बुद्ध की मूर्ति या चित्र और बोधिसत्त्व बाबा साहब अम्बेडकर का फोटो स्थापित करना चाहिये। बच्चे को स्नान कराकर उसे नये वस्त्र पहनाना चाहिए। माता-पिता भी स्नान कर स्वच्छ वस्त्र पहनें। शिशु को गोद में लेकर माता और पिता बुद्ध मूर्ति के सम्मुख बैठें। बौद्ध भिक्षु या बौद्धाचार्य तथा निमन्त्रित बन्धुओं के आ जाने पर नीचे लिखी विधि से सारे काम करे—

सामग्री-तश्तरी में सजे हुए फूल, कटोरी में पानी, अगरबत्ती,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दीपक या मोमबत्ती, पानी भरा हुआ मिट्टी का एक छोटा घड़ा, कच्चा सूत और जामुन, आम या अशोक वृक्ष के पत्ते।

इस सब सामग्री को पहले ही भगवान् बुद्ध की मूर्ति या चित्र के सामने सजा कर रख दें। घड़े के पानी में पत्तों का डंठल डूबे रहेंगे तथा पत्तियां ऊपर रहेंगी। कच्चा सूत घड़े के गले में लपेट दें।

(१) नमस्कार (पहले की तरह) करते हुए बौद्ध भिक्षु या बौद्धाचार्य से त्रिशरण और पंचशील की याचना इस प्रकार करें—

ओकास, अहं भन्ते, तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

(अवसर दीजिये भन्ते मैं त्रिशरण के साथ पंचशील की याचना करता हूँ। दया करके मुझे शील दीजिये)

दुतियम्पि अहं भन्ते, तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ मे भन्ते।

ततियम्पि अहं भन्ते, तिसरणेन सह पंचसीलं धम्मं याचामि। अनुग्गहं कत्वा सीलं देथ में भन्ते।

आचार्य कहेंगे –

यमहं वदामि तं वदेहि

(मैं जो कहूँ, वही कहो)

उपासक—आम्, भन्ते (अच्छा पूज्यवर)

भिक्षु या बौद्धाचार्य त्रिशरण दें।

त्रिशरण के बाद आचार्य कहेंगे–

तिसरणगमनं सम्पुण्णं (त्रिशरण गमन पूर्ण हुआ)

उपासक—आम्, भन्ते (हां, भन्ते)

इसके बाद आचार्य पंचशील दें। उसके बाद—

आचार्य—तिसरणेन सद्धिं पंचसीलं धम्म साधुकं सुरक्खितं कत्वा अप्पमादेन सम्पादेतब्बं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(त्रिशरण सहित पंचशील की ठीक आचरण से सुरक्षा करके, बिना लापरवाही उसका पालन करो)

उपासक—आम्, भन्ते (अच्छा, भन्ते)

(२) घड़े में लपेटे हुए सूत का सिरा शिशु के माता-पिता के हाथ में पकड़ा कर भिक्षु या बौद्धाचार्य मंगलसुत्त का या अन्य सूत्रों का पाठ करे।

(३) माता-पिता की सलाह से भिक्षु या बौद्धाचार्य शिशु के नाम की घोषणा करे।

(४) तदनन्तर नीचे लिखी गाथाओं को बोलते हुये भिक्षु या बौद्धाचार्य कलश में रखे पत्तों से धीरे-धीरे घड़े के पानी से माता-पिता एवं शिशु पर अभिषेक करे—

भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।

सब्बबुद्धानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।

भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।

सब्बधम्मानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।

भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।

सब्बसंघानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।

(तुम्हारा सभी प्रकार से मङ्गल हो, सभी देवता तुम्हारी रक्षा करें तथा समस्त बुद्ध, धर्म और संघ की महिमा से तुम्हारा हमेशा कल्याण हो।)

(५) अन्त में भिक्षु या बौद्धाचार्य घड़े में लपेटे सूत को तिहरा करके माता-पिता एवं शिशु की दाहिनी कलाई में नीचे लिखी गाथा बोलते हुए बांधें।

सब्बे बुद्धा बलप्पत्ता पच्चेकानं च यं बलं।

अरहन्तानं च तेजेन रक्खं बन्धामि सब्बसो।।

इस रक्षा सूत्र को बाद में खोल कर घर में ही कहीं बांध देना चाहिये और घड़े के बचे जल को घर में तथा आस-पास छिड़क दें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(२) विद्यारम्भ –

शिशु जन्म के तीन वर्ष बाद यह संस्कार करना चाहिये।

सामग्री—तश्तरी में सजे फूल या फूलों का गुलदस्ता, कटोरी में पानी, अगरबत्ती, दीपक या मोमबत्ती, स्लेट एवं खड़िया मिट्टी।

विधि– (१) बच्चे को नहला-धुलाकर और साफ कपड़े पहनाकर घर में बुद्ध की मूर्ति या चित्र तथा बाबा साहब के फोटो के सामने या बुद्धमन्दिर में ले जाना चाहिए।

(२) बुद्ध की मूर्ति के सामने सजे फूल, गुलदस्ता, पानी, अगरबत्ती और मोमबत्ती या दीपक जलाकर रखना चाहिये।

(३) पूर्व विधि से नमस्कार करते हुए भिक्षु या बौद्धाचार्य से त्रिशरण और पंचशील देने की प्रार्थना करनी चाहिये। इसमें बालक के साथ माता-पिता भी सम्मिलित हों।

(४) त्रिशरण एवं पंचशील ग्रहण करना

(५) बालक के हाथ से भिक्षु या बौद्धाचार्य स्लेट पर खड़िया मिट्टी से 'अरहं' लिखवाये।

(६) तदुपरान्त सुविधानुसार माता-पिता, बालक का किसी विद्यालय में नाम लिखवाये।

(३) श्रामणेर दीक्षा संस्कार–

बौद्ध धर्म में प्रचलित रीति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में कम से कम एक बार प्रव्रज्या (श्रामणेरदीक्षा) ग्रहण करनी चाहिये। श्रामणेर को दस शीलों का पालन करना चाहिये। श्रामणेर-दीक्षा तीन दिन, पांच दिन, सात दिन, पन्द्रह दिन से लेकर एक दो वर्ष तक की भी होती है। दीक्षा लेकर विहार में भिक्षुओं के साथ रहते हुये ध्यान-भावना एवं अध्ययन, मनन में समय बिताना चाहिये। यह दीक्षा भिक्षु से ही ग्रहण की जा सकती है। यह जीवन में कभी भी ग्रहण की जा सकती हैं। साधारण रूप से नियम यह है कि ७ वर्ष की आयु के बाद बच्चे की श्रामणेर दीक्षा होनी चाहिये। इसकी विधि भिक्षुओं को ज्ञात होती है। विनय पिटक में इसका पूरा वर्णन है। अतः यहाँ नहीं दी जा रही है।

१. प्राणिहिंसा न करना, २. चोरी न करना, ३. अब्रह्मचर्य से विरत रहना,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(४) विवाह संस्कार–

(क) कुछ लोगों के बैठने लायक कपड़े या तृण का मण्डप बनाकर उसे फूल-पत्ती से सजाकर मण्डप में या बुद्धमन्दिर में या बौद्धविहार में विवाह-संस्कार करना चाहिये। यदि घर में मण्डप बनाकर उसमें विवाह करना हो तो एक ऊँचा स्थान बनाकर उस पर भगवान् बुद्ध की मूर्ति या चित्र और बाबा साहब अम्बेडकर का फोटो रखना चाहिये।

(ख) भगवान् बुद्ध के सामने एक तश्तरी में सजे हुए फूल, कटोरियों में पानी, अगरबत्ती और दीपक अथवा मोमबत्ती जलाकर रखनां चाहिये।

(ग) एक मंगल कलश (मिट्टी का नया घड़ा) में पानी भर कर उस पर जामुन, आम या अशोक आदि वृक्षों के पत्ते रखकर घड़े के गले में सूत लपेटकर बीच में रखना चाहिये। उसके एक ओर वर और कन्या बैठेंगें। कन्या वर के दाहिनी ओर बैठेगी। उसके पीछे दूसरी कतार में वर और कन्या के माता-पिता बैंठेगे। माता-पिता के अभाव या अनुपस्थिति में उनके अभिभावक बैठेंगे।

(घ) सबसे पहले विवाह-विधि कराने वाला व्यक्ति वर, कन्या और उनके माता-पिता को त्रिशरण और पंचशील प्रदान करेगा।

(ङ) समर्पण-घोषणा–

(कन्या के माता-पिता द्वारा वर के माता-पिता के प्रति) त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म एवं संघ) की महिमा से हम उपस्थित समाज को साक्षी (पंच) मान कर अपनी प्रिय पुत्री को पुत्रवधू के रूप में आपको समर्पित कर रहे हैं। आज से हमारी पुत्री के सुख, दुःख आदि के तथा माता-पिता के समान संरक्षण के आप उत्तरदायी हैं। हमें विश्वास है कि आप अपनी इस

---

४. मिथ्या (झूठ) न बोलना, ५. शराब आदि नशीली एवं प्रमादकारी वस्तुओं से दूर रहना, ६. विकाल (१२ बजे दिन के बाद से दूसरे दिन प्रातः काल तक) भोजन न करना, ७. नाच, गानां, बाजा और मेले-तमाशे से दूर रहना, ८. माला और सुगन्ध लेपनादि धारण न करना तथा शरीर शृंगार के लिये किसी प्रकार के आभूषण आदि धारण न करना, ९. ऊँची और कीमती शय्या पर न सोना तथा १०. सोना, चांदी ग्रहण न करना। ये श्रामणेर के दस शील हैं, जिनका उसे ठीक ढंग से पालनं करना होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नयी जिम्मेदारी का मन, वाणी और आचरण से निर्वाह करेंगे और दोनों घरों का सम्बन्ध दिनों-दिन मधुर बनाते रहेंगें।

(च) समर्पण-स्वीकार–

(वर के माता-पिता द्वारा कन्या के माता-पिता के प्रति) त्रिरत्न की महिमा से उपस्थित समाज को साक्षी बनाकर हम आपको वचन देते हैं कि आपके द्वारा दी हुई जिम्मेदारी का हम मन, वाणी और आचरण से निर्वाह करेंगे तथा पुत्रवधू के सुख, दुःख और उसके संरक्षण में किसी तरह की कमी नहीं आने देंगे। हम उपस्थित समाज और आपको विश्वास दिलाते हैं कि दोनों घरों का सम्बन्ध मधुर बनाये रखेंगे।

(छ) समर्पणविधि–

(१) कन्या के पिता की दाहिनी हथेली पर कन्या की माता की दाहिनी हथेली रखना।

(२) इनके ऊपर कन्या की दाहिनी हथेली और उस पर वर की दाहिनी हथेली रखना।

(३) इन पर वर की माता की दाहिनी हथेली और उस पर वर के पिता की दाहिनी हथेली रखना।

(४) सबसे नीचे एक बड़ी थाली रखना और

(५) कन्या के मामा अथवा भाई द्वारा हाथों पर मंगल कलश से धीरे-धीरे पानी गिराना।

(६) इस अवसर पर विवाह करानेवाला व्यक्ति मंगलसुत्त का पाठ करता रहेगा और जब तक पाठ होगा, पानी बराबर गिरता रहेगा।

(७) पाठ बंद होने पर कन्या उठकर वर के बायीं ओर बैठ जायेगी।

(ज) वर द्वारा प्रतिज्ञा करना–

त्रिरत्न की महिमा से मैं उपस्थित समाज को साक्षी करके पाँच पवित्र प्रतिज्ञायें करता हूँ—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बौद्धाचार्य–

पंचहि खो गहपतिपुत्त, ठानेहि सामिकेन पच्छिमा दिसा भरिया पच्चुपट्ठातब्बा—

सम्माननाय, अनवमानाय, अनतिचरियाय इस्सरियवोस्सग्गेन, अलङ्कारानुप्पदानेन।

वर कहे–

१. **सम्माननाय–** मैं हमेशा मन, वाणी और आचरण से अपनी पत्नी का सम्मान करूँगा और दूसरों से भी उसे सम्मान दिलाऊँगा।

२. **अनवमानाय–**मैं मन, वाणी और आचरण से कभी भी अपनी पत्नी का अपमान नहीं करूँगा, न उसे अन्य किसी से अपमानित होने दूँगा।

३. **अनतिचरियाय–**मैं कभी भी शराब आदि नशीली वस्तुओं का सेवन न करूँगा। जुआ न खेलूँगा तथा अपनी पत्नी के अलावा अन्य सभी स्त्रियों को माँ-बहिन की दृष्टि से देखूँगा।

४. **इस्सरियवोस्सग्गेन–** मैं उचित तरीके से धन कमा कर अपने माता-पिता और अपने आश्रितों का ध्यान रखते हुये अपनी कमाई पत्नी के हाथ में दूँगा।

५. **अलङ्कारानुप्पदानेन–**मैं अपनी पत्नी को वस्त्र, आभूषण आदि से सदैव सन्तुष्ट रखूँगा।

अहं पटिञ्चं करोमि, अज्जतो पट्ठाय पंचपटिञ्चानुसारेण कायेन वाचाय मनसा च अप्पमादेन आचरणं करिस्सामि।

(मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से लेकर जीवनभर इन पांच प्रतिज्ञाओं के अनुसार शरीर, वाणी और मन से बिना लापरवाही के आचरण करूँगा।

(झ) वधू द्वारा प्रतिज्ञा करना–

बौद्धाचार्य–

इमेहि खो गहपतिपुत्त, पंचहि ठानेहि सामिकेन पच्छिमा दिसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भरिया पच्चुपट्ठिता पंचहि ठानेहि सामिकं अनुकम्पन्ति—सुसंविहिता कम्मन्ता च होति। संगहितपरिजना च। अनतिचारिनी च। सम्मतं अनुरक्खति। दक्खा च होति अनलसा सब्बकिच्चेसु।

कन्या कहे–

१. **सुसंविहितकम्मन्ता–**मैं अपने घर के सभी कार्य कुल की रीति से भली प्रकार सम्पन्न करूँगी और अपनी शक्ति भर अपने काम से सभी को सन्तुष्ट रखूँगी।

२. **सुसंगहितपरिजना–**मैं अपने सदाचार और सद्व्यवहार से अपने सास-ससुर आदि सभी परिजनों को प्रसन्न रखने और इकट्ठा रखने का प्रयत्न करूँगी।

३. **अनतिचारिणी–** मैं सभी प्रकार के बुरे काम न करते हुए अपने पति का विश्वास प्राप्त करूँगी।

४. **सम्मतं अनुरक्खणं–** मैं अपने परिवार और पति की सभी प्रकार की सम्पत्ति की समुचित रीति से रक्षा करूँगी।

५. **दक्खा च अनलसा च सब्बकिच्चेसु–** मैं घर के सभी काम (भोजन बनाना, सीना-पिरोना, सफाई आदि) बिना आलस्य के ठीक समय पर ठीक ढंग से करुंगी।

अहं पटिञ्चं करोमि, अज्जतो पट्ठाय पंचपटिञ्चानुसारेण कायेन वाचाय मनसा च अप्पमादेन आचरणं करिस्सामि।

(मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि आज से लेकर जीवन भर इन पाँच प्रतिज्ञाओं के अनुसार शरीर, वाणी और मन से बिना लापरवाही के आचरण करूंगी)।

(ञ) पत्नी खड़ी होकर खड़े हुए पति के गले में जयमाल (फूलों की या जरी गोटे की माला) डाले। इसी प्रकार पति भी पत्नी के सौभाग्य के लिये उसके गले में सौभाग्य-सूत्र या पुष्प पहनावे।

(ट) वर की माता कन्या को तथा कन्या की माता वर को मिठाई खिलायें।

(ठ) उपस्थित सभी पूज्य स्त्री-पुरुष वर और वधू के ऊपर अक्षत और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुष्प गिराते हुए आर्शीवाद देंगे। उस समय इन मन्त्रों का सामूहिक पाठ होता रहेगा —

भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बबुद्धानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।
भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बधम्मानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।
भवतु सब्बमंगलं रक्खन्तु सब्बदेवता।
सब्बसंघानुभावेन सदा सोत्थि भवन्तु ते।।

(ड) बौद्धाचार्य मंगलकलश के सूत्र को तिहरा करके वर-वधू तथा उनके माता-पिता की दाहिनी कलाई में बांधें तथा इस गाथा का उच्चारण करे —

सब्बे बुद्धा बलप्पत्ता पच्चेकानं च यं बलं।
अरहन्तानं च तेजेन रक्खं बन्धामि सब्बसो।।

(दूसरे दिन इस सूत्र को हाथ से निकालकर कहीं घर में बांध दे।)

(ण) केवल स्त्रियों की सहायता से वर के द्वारा वधू की माँग में सिन्दूर भरा जाय।

(त) वर-वधू सबको प्रणाम करेंगे—भगवान् बुद्ध, भिक्षुओं, बौद्धाचार्य, माता-पिता तथा अन्य ज्येष्ठ लोगों को। विवाह कृत्य प्रातः काल हो तो उसी दिन, रात्रि में हो तो दूसरे दिन भिक्षुओं को भोजन-दान देना चाहिये।

(५) मृत्यु-संस्कार–

मरणासन्न व्यक्ति को धम्मपद का पाठ या परित्राण पाठ सुनाना चाहिये। उस समय भिक्षुओं को दान देना चाहिये। उस समय भिक्षु न मिले तब भी दान करा कर बाद में उन्हें दे देना चाहिये।

मृत्यु हो जाने पर निम्न विधि करें—

(१) मृतक को श्मशान ले जाने से पूर्व स्नान करा कर, शरीर पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुगन्धित द्रव्य चन्दन आदि लगाना चाहिये।

(२) मृत स्त्री या पुरुष को वस्त्र (कफन) ओढ़ाना चाहिये।

(३) भिक्षु से या बौद्ध गृहस्थ (बौद्धाचार्य) से वहाँ उपस्थित सभी लोग त्रिशरण और पंचशील ग्रहण करें।

(४) भिक्षु या बौद्धाचार्य नीचे लिखी गाथा का पाठ करके उपस्थित लोगों को संसार की अनित्यता का उपदेश दे—

अनिच्चा बत संखारा उप्पादवयधम्मिनो।

उप्पज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमो सुखो।।

(सभी संस्कार (वस्तुएं) अनित्य हैं। उत्पन्न होकर नष्ट होना उनका स्वभाव है। उत्पन्न होकर वे नष्ट हो जाती हैं। उनका शान्त हो जाना परम सुख है)

जो उत्पन्न हुआ है, उसे एक न एक दिन जरूर मरना है। यह नियम सभी पर लागू है। भगवान् बुद्ध को भी शरीर छोड़ना ही पड़ा। सुनते हैं कि बुद्ध के शरीर छोड़ने के कुछ देर पहले यह जानकर कि भगवान् अब नहीं रहेंगे, उनके प्रधान शिष्य आनन्द तथा उपस्थित भिक्षु और उपासक समूह विलाप करने लगे। तब भगवान् ने आनन्द को बुलाकर कहा—आनन्द, तथागत ने यह कब कहा था कि तथागत नित्य है (याने कभी मरेंगे नहीं)। आनन्द जो उत्पन्न हुआ है, उसका मरना निश्चित है। यह बात जानकर बुद्धिमान व्यक्ति जरूर होनेवाली बात के लिये शोक नहीं करता। तुम प्रज्ञा से अपना दुःख कम करो और दूसरे लोगों को भी समझाओ।

भगवान् ने समझाया—अनित्यता देवताओं सहित सारे लोक का धर्म है। उत्पन्न प्राणी की मृत्यु निश्चित है।

सब्बे संखारा अनिच्चा, दुक्खा, अनत्ता।

(५) इसके पश्चात् मृतक की अर्थी श्मशान ले जाना चाहिये। अर्थी ले जानेवाले लोग धीरे-धीरे बोलें—

सब्बे संखारा अनिच्चा, सब्बे संखारा दुक्खा

सब्बे धम्मा अनत्ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(६) श्मशान पर त्रिशरण, पंचशील ग्रहण करके चिता की तीन बार परिक्रमा कर अग्नि जलाना चाहिये।

(७) तीसरे दिन अस्थियों को बटोर कर एकत्र कर लें और यथा-समय उसे किसी बड़ी नदी या समुद्र में प्रवाहित कर देना चाहिये।

(८) मृत्यु के सातवें, दसवें या बारहवें दिन मृत व्यक्ति के पुण्य के लिये जैसी शक्ति हो उसके अनुसार भिक्षुओं को, परिवार के लोगों को तथा अन्य उपासकों को भोजन कराना चाहिये। भिखारियों को भी भोजन देना चाहिये।

(९) भिक्षुओं को भोजन (मतकभत्त) और अन्य वस्तुएं देने से पूर्व त्रिशरण एवं पंचशील ग्रहण करके हाथ जोड़ ऐसा कहें—

कालकतानं अम्हाकं ञातीनं पुञ्ञत्थाय इमं भिक्खं भिक्खु-संघस्स देम।

(मरे हुए अपने सम्बन्धियों के पुण्य के लिए यह भोजन दान हम भिक्षुसंघ को देते हैं)। भोजन-दान के बाद—

(१०) भिक्षु संघ को वस्त्र का दान करना चाहिए। भिक्षु उपस्थित न हो तो वह वस्त्र बौद्धाचार्य ले सकता है, किन्तु बाद में वह भिक्षुसंघ को दे देगा।

(११) मृतक के घर का कोई व्यक्ति एक पात्र (लोटे या गिलास) में जल लेकर धीरे-धीरे थाली में गिराए। पात्र में अन्य सम्बन्धी भी हाथ लगायें।

इदं नो ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातियो। (यह पुण्य कर्म हमारे सम्बन्धी के लिये हो, हमारा सम्बन्धी सुखी हो)

तदुपरान्त भिक्षु या बौद्धाचार्य इन गाथाओं को कहे—

उन्नमे उदकं वट्टं तथा निन्नं पवत्तति।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति।।
यथा वारिवहा पूरा परिपूरेन्ति सागरं।
एवमेव इतो दिन्नं पेतानं उपकप्पति।।
इच्छितं पत्थितं तुम्हं खिप्पमेव समिज्झतु।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सब्बे पूरेन्तु चित्तसंकप्पा चन्दो पन्नरसो यथा ।।

आयुरारोग्यसम्पति सग्गसम्पत्तिमेव च ।

ततो निब्बानसम्पति इमिना ते समिज्झतु ।।

(जिस प्रकार ऊँचे स्थल पर गिरा पानी नीचे बह जाता है, उसी प्रकार यहाँ दिया गया पुण्य मरे हुये लोगों को प्राप्त होता है। जिस प्रकार भरी हुई नदियाँ समुद्र को भर देती हैं, उसी प्रकार यहाँ दिया हुआ पुण्य मरे हुये लोगों को प्राप्त होता है। तुम्हारी चाही हुई और कामना की हुई सभी वस्तुयें तुम्हें शीघ्र प्राप्त हों। इस पुण्य कर्म से तुम्हें आयु, आरोग्य, स्वर्ग और निर्वाण सुख प्राप्त हो।

(१२) भिक्षु या बौद्धाचार्य ऊपर लिखी ४ गाथाओं को बोलते रहेंगे और पानी गिराने वाला व्यक्ति तब तक थाली में पानी गिराता रहेगा।

(१३) उसके बाद भिक्षु या बौद्धाचार्य परित्राण पाठ करेंगे और .उपदेश देंगे।

(१४) गृहस्थ हाथ जोड़कर पंचांग प्रणाम करे।

(१५) भिक्षु या बौद्धाचार्य नीचे लिखी गाथा कहे—

अभिवादनसीलिस्स निच्चं बुद्धापचायिनो ।

चत्तारो धम्मा वड्ढेन्ति आयु वरणो सुखं बलं ।।

(जो हमेशा अपने से बड़ों को प्रणाम या सत्कार करता रहता है, उसकी ये चार बातें बढ़ती हैं—उम्र, वर्ण (रूप रंग), सुख और बल)

(६) बौद्ध धर्म-दीक्षा–

बौद्ध धर्म विश्व का सबसे अधिक जनप्रिय एवं प्रगतिशील धर्म हैं। मानवीय समता, बन्धुता, स्वतन्त्रता एवं करुणा इसके आधार हैं। जाति-पाँति, ऊँच नीच, छूत-अछूत आदि मानव मानव में फूट और घृणा फैलाने वाले सिद्धान्त इसमें नहीं हैं। यह एक उदार और नैतिक आन्दोलन है। यही कारण है कि आज भारत में बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने की एक लहर उमड़ पड़ी है। इसकी शुरुआत सन् १९५६ में बोधिसत्त्व बाबा सा० अम्बेडकर ने की, जब उन्होंने अपने लाखों लाख अनुयायियों के साथ नागपुर में सामूहिक धर्मदीक्षा ग्रहण की।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने से पहले अपने मन से जात पाँत, ऊँच-नीच छूत-अछूत आदि की भावना बिलकुल निकाल देना होगा। इसके बाद यह प्रयास करना चाहिये कि दस, बीस, सौ, पचास लोग मिलकर दीक्षा लें, किन्तु इस काम में अधिक विलम्ब होते दिखे तो रुकना नहीं चाहिये, क्योंकि मंगल कार्य जितना जल्दी हो उतनी अच्छा है।

दीक्षा विधि–

(१) दीक्षा लेने वाले लोगों को चाहिये कि आसपास के किसी बौद्ध बिहार में जाकर वहाँ रहने वाले बौद्ध भिक्षु या श्रामणेर से अपनी इच्छा जाहिर करें और वहीं धर्मदीक्षा ग्रहण करें।

यदि आसपास बौद्ध भिक्षु न मिले तो किसी गृहत्यागी अर्थात् अनागारिक बौद्ध से दीक्षा लेनी चाहिये। वह भी न मिले तो ज्येष्ठ सदाचारी बौद्ध उपासक से दीक्षा ले लेनी चाहिये। इस अवसर पर किसी ऊँचे आसन पर भगवान् बुद्ध की मूर्ति या चित्र और बाबा साहब अम्बेडकर का चित्र स्थापित करना चाहिये। भगवान् के सामने तश्तरी में सजे हुए फूल या फूलों का गुलदस्ता, कटोरी में पानी, अगरबत्ती और दीपक या मोमबत्ती जलाकर रखनी चाहिये।

(२) नमस्कार विधि से पंचांग नमस्कार करते हुए भिक्षु या बौद्धाचार्य (दीक्षा देने वाले व्यक्ति) से त्रिशरण और पंचशील देने को प्रार्थना करनी चाहिये।

(३) भिक्षु या बौद्धाचार्य विधिवत् 'नमो तस्स०' आदि का तीन बार उच्चारण करते हुए त्रिशरण और पंचशील प्रदान करे।

(४) दीक्षा लेनेवाले बोधिसत्त्व बाबा सा० अम्बेडकर द्वारा घोषित २२ प्रतिज्ञायें दुहरायें।

(५) तदनन्तर अपने को बौद्ध घोषित करना चाहिये। जीवन भर भगवान् बुद्ध की पूजा-वन्दना करना, सूत्रपाठ करना, भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं (शील, समाधि और प्रज्ञा) को जीवन में उतारना, भिक्षुओं को दान देना तथा बौद्ध धर्म के प्रचार का यथाशक्ति प्रयास करना चाहिये। अपने बच्चों का बौद्ध विधि से संस्कार करना तथा बौद्ध नाम रखना चाहिये। अपने को न किसी से नीचा और न ऊँचा समझना चाहिये, अपितु सबके प्रति समान बुद्धि रखनी चाहिये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(जैन संस्कार विधि)

कर्म भूमि के प्रारम्भ में, भोगभूमि में उपलब्ध सामग्री के अभाव हो जाने से असि, मषि, कृषि, शिल्प, सेवा, वाणिज्य के उपदेश के साथ ही देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन गृहस्थ जीवन के दैनिक षट्कर्मों का जनता को उपदेश देकर अपने पूर्ववर्ती चौदह कुलकरों की परम्परा का निर्वाह करते हुए प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने अपने प्रथम पुत्र भरत चक्रवर्ती को सर्वप्रथम सुसंस्कृत बनाया और स्वयं भी विवाह-संस्कार द्वारा गृहस्थ जीवन के बाद का आदर्श प्रस्तुत करने को दिगम्बर मुनि की जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर मोक्ष का द्वार उद्घाटित किया।

षट्खण्ड विजय के पश्चात् भारतवर्ष को अपने नाम से सार्थक बनाने वाले १६ वें कुलकर भरत महाराज ने जिनेन्द्र देव की महामह पूजा के अन्तर्गत तत्कालीन जनता को जिनागम के उपासकाध्ययनांग से इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप का निर्देश करते हुए क्षत्रिय और वैश्य वर्ण में जिस संस्कार विधि का प्रचार-प्रसार किया, उसका आचार्य जिनसेन के आदिपुराण के अनुसार यहाँ संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

माता के गर्भ से उत्पन्न होने के पश्चात् और गर्भ में आने के पूर्व संस्कारों का जो महत्व है तथा जिनसे जीवन निर्माण होता है, वे षोड़श संस्कार हैं।

बिना साफ की गई भूमि में जिस प्रकार बीज फली भूत नहीं होता, उसी प्रकार यह जीवित शरीर, विधिपूर्वक संस्कारों के बिना संयम, व्रत और शुभाचरण का पात्र नहीं होता।

गर्भ में आने वाले बालक को उसकी मानसिक और शारीरिक शक्तियों की दृढ़ता और कमजोरी माता द्वारा प्राप्त होती है। माता के मन, वचन, कार्य की क्रिया का असर बालक के ऊपर पड़ता है। अतः माता को विवेकशील और धर्मात्मा होना चाहिए।

बालक के पूर्वोपार्जित कर्म, उसके निर्माण में अन्तरंग निमित्त हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और बाह्य निमित्त अन्य सामग्री होती है। जैसे माता के आहार का अंश गर्भस्थित बालक को प्राप्त होता है, जिससे उसके शरीर को पोषण मिलता है, साथ ही उसके विचारों व क्रियाओं का उस पर असर होता है। अतः बच्चों को सुयोग्य बनाने के लिए योग्य माताओं के समान शास्त्रानुसार निम्नलिखित धार्मिक संस्कारों की आवश्यकता है। ये संस्कार वैज्ञानिक दृष्टि से भी द्रव्य परमाणु की शक्ति की अपेक्षा से बालकों के मन वचन और शरीर के भीतर अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

प्रथम गर्भाधान-संस्कार

विवाह केवल विषयाभिलाषा से ही नहीं, अपितु पुत्रोत्पति एवं गार्हस्थ्य जीवन में परस्पर सहयोग द्वारा सदाचरण, लोकसेवा तथा आत्मोन्नति के उद्देश्य से किया जाता है।

स्त्री को मासिक धर्म के तीन दिन, एकान्त में, बिना किसी को स्पर्श किये, व्यतीत करना चाहिए। वह चौथे दिन स्नान कर घर के भोजन आदि विशेष कार्यों को न करते हुए बारह भावना का चिन्तन करती रहे। और साधारण कामकाज में भाग लेती रहे। पाँचवें दिन शुद्ध होकर मन्दिर में जाकर जिनेंन्द्र दर्शन, पूजन, स्वाध्याय आदि करे। इस प्रकार उसे व्यवहार-दृष्टि से ३ दिन और धर्म की दृष्टि से चार दिन का सूतक पालना चाहिये। पाँचवें दिन से शुभ मुहूर्त्त यानी अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, उत्तराषाढ़, मृगशिर, हस्त, अनुराधा, स्वाति, शतभिषा, धनिष्ठा, चित्रा-इन नक्षत्रों में २, ३, ५, ७, १०, ११, १२, १३ इन तिथियों में सोम, बुध, गुरु, शुक्र इन वारों में गर्भाधान शुभ है। गर्भाधान के पूर्व संस्कार विधि में विनायक यन्त्र-पूजा व हवन में गृहस्थाचार्य या स्वयं निम्नलिखित विशिष्ट मंत्रों से आहुति देते हुए पति-पत्नी पर आशीर्वाद रूप में पीले चावल क्षेपण करें।

"सज्जातिभागी भव, सद्गृहिभागी भव, मुनीन्द्रभागी भव, सुरेन्द्रभागी भव, परमाराज्यभागी भव, आर्हन्त्यभागी भव, परमनिर्वाणभागी भव।" पश्चात् पुण्याहवाचन, शान्ति पाठ, समाधि व सम्मापन पाठ पढ़ कर पूजा पूर्ण करें। अन्त में सौभाग्यवती स्त्रियों से आशीर्वाद ग्रहण करें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नोट :- यहाँ और आगे भी विनायक यत्र पूजा, मंगलाष्टक, हवन की सामान्य ११२ आहुतियाँ, संकल्प, कलश स्थापन, पुण्याह वाचन एवं शान्ति पाठ आदि आगे की विवाह-विधि के पाठ में से ले लेना चाहिये।

आयुर्वेद और ज्योतिष के अनुसार मासिक धर्म के पाँचवें दिन से १२ रात्रि तक समरात्रि-६, ८, १० वीं में पति-पत्नी द्वारा पुत्र और ५, ७, ९ वीं रात्रि में कन्या उत्पन्न होती है। इनमें भी पर्व दिन ८, १४, १५ तिथि को ब्रह्मचर्य रखना चाहिये। उक्त मूहूर्त दिन व संस्कार विधि के पालन से सफलता के साथ गर्भस्थित आत्मा पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इन नियमों को समझकर थोड़े भी संयम से काम लें तो इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न हो सकती है।

द्वितीय प्रीति-संस्कार

गर्भ के दिन से तीसरे माह में गर्भाधान क्रिया के माफिक विनायक यंत्र पूजा, ११२ आहुतियों से हवन, पुण्याहवाचन, शान्तिपाठ, समाधि पाठ, क्षमापन करके हवन के नीचे लिखे खास मन्त्रो की आहुति देवें और पति-पत्नी पर पुष्पक्षेपण करें।

"त्रैलोक्यनाथो भव, त्रिकालज्ञानी भव, त्रिरत्नस्वामी भव" दूसरे समय "ॐ कं ठ व्हः पः अ सि आ उ सा गर्भार्भक प्रमोदेन परिरक्षत स्वाहां" यह मंत्र तीन बार पढ़ कर गर्भवती के उदर पर पति द्वारा जलक्षेपण करावें।

तृतीय सुप्रीति-संस्कार

गर्भाधान के पाँचवे माह में यह सुप्रीति या पुंसवन क्रिया, श्रवण, रोहिणी, पुष्य नक्षत्र, रवि, मंगल, गुरु, शुक्र वार, २, ३, ५, ७, १०, ११, १२, १३ तिथि के मुहूर्त में करें। इसमें पूर्ववत् पूजा, हवन, पुण्याहवाचन आदि करके निम्न प्रकार खास मन्त्रों से आहुति व पुष्पों से आशीर्वाद देवें।

'अवतारकल्याणभागी भव, मन्दरेन्द्राभिषेक कल्याणभागी भव,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निष्क्रांति कल्याणभागी भव, आर्हन्त्य कल्याणभागी भव, परमनिर्वाण कल्याणभागी भव'। इसी समय पति, पत्नी के शिर की माँग में सिंदूर और १०८ जौ के दानों की पहले से तैयार कराई गई माला 'ॐ झं वं क्ष्मीं हं सः कान्ताग्रीवायां यवमालां क्षिपामि झौं स्वाहा' मन्त्र पढ़कर पत्नी के गले में पहनावे। पत्नी अपनी आँखों में अंजन लगावे।

चतुर्थ घृति या सीमंतोन्नयन-संस्कार

यह क्रिया सातवें माह में शुभ मुहूर्त मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मूल, उत्तरात्रय, रोहिणी, रेवती इन नक्षत्रों व रवि, मंगल, गुरु इन वारों तथा १, २, ३, ५, १०, ११, १३ इन तिथियों में करें। इनका दूसरा नाम खोला भरना है। इसमें पहले के समान पूजा, हवन, पुण्याहवाचन आदि करें। नीचे लिखे खास मन्त्रों से आहुति व आर्शीर्वाद देवें।

सज्जातिदातृभागी भव, सद्गृहस्थदातृभागी भव, मुनीन्द्रदातृभागी भव, सुरेन्द्रदातृभागी भव, परमराज्यदातृभागी भव, आर्हन्त्यदातृभागी भव, परमनिर्वाणदातृभागी भव।

अनन्तर पुत्रवाली सौभाग्यवती स्त्री द्वारा तेल व सिन्दूर में डुबोकर शमी (सोना) वृक्ष की समिधा (सींक) से गर्भिणी पत्नी के केशों की माँग भरी जावे। इसी दिन गोद (खोल) में श्रीफल, मेवा, फल आदि भराकर पति-पत्नी या केवल पत्नी महिलाओं के साथ जिन मन्दिर जावें।

पंचम मोद-संस्कार

यह संस्कार गर्भ के दिन से ९वें माह में किया जाता है। इसमें पूर्ववत् यंत्र पूजा व हवन करें। साथ ही नीचे लिखे खास मन्त्रों से आहुति व दम्पति को आशीर्वाद देवें।

सज्जातिकल्याणभागी भव, सद्गृहस्थकल्याणभागी भव, वैवाहकल्याणभागी भव, मुनीन्द्रकल्याणभागी भव, सुरेन्द्रकल्याणभागी भव, मन्दराभिषेककल्याणभागी भव, यौवराज्यकल्याणभागी भव।

पुण्याहवाचन, शान्ति पाठ आदि के पश्चात् पति, पत्नी को णमोकार मन्त्र पढ़ कर रक्षा सूत्र बाँधें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नोट :- यदि गर्भाधान संस्कार क्रमशः न कर सकें तो ४-५ वें संस्कारों के साथ उन संस्कारों के मन्त्र व क्रियायें इस समय कर ली जावें। गर्भिणी महिला को प्रतिदिन "ओं ह्रौं अर्ह असिआउसा नमः" इस मन्त्र की ज़ाप कर लेना चाहिए। उसे गर्भ के पाँचवे माह से अधिक ऊँची जमीन पर चढ़ना नहीं चाहिए। वह वाहन (बैलगाड़ी, अश्व या धक्के वाली गाड़ी) पर न बैठे। तेज औषध न लेवें, बोझा न ढोवे, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे, सादा भोजन करे। स्वाध्याय में अधिक समय व्यतीत करे। हाथ-चक्की से आटा पीसने का अभ्यास रखे। इन संस्कारों को छोड़कर अन्यत्र हवन में शामिल न हो। क्रोधादि कषाय न कर शान्त परिणाम रखे। पति का भी कर्त्तव्य है कि वह पत्नी को उक्त कार्यों में सहयोग देवे।

छठा प्रियोद्भव-संस्कार

बालक के जन्म के बाद यह संस्कार किया जाता है। जन्म का १० दिन का सूतक होने से गृहस्थाचार्य या जिनको सूतक न लगे, वे जिनमन्दिर में पूजा-विधान करें। हवन में 'दिव्य नेमिविजयाय स्वाहा' परमनेमिविजयाय स्वाहा, आर्हत्यनेमिविजयाय स्वाहा, घातिजयो भव, श्रीआदि देव्यः जातक्रियाः कुर्वन्तु, मन्दराभिषेकार्हो भवतु।' इन मन्त्रों से आहुति देवे। पिता आदि भी पुत्र को देख कर यह आशीर्वाद देवें। इस दिन बाजे बजवावें।

नोट :- कन्या उत्पन्न होने पर भी पहले बताये माफिक यथायोग्य संस्कार करें। उसकी उपेक्षा न करें।

मूल-शान्ति

नोट :- पुत्र या पुत्री के मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने पर जन्म पत्रिका बनाते समय ज्योतिषी अरिष्ट बताते हैं। जैन विधि से उसकी शान्ति निम्न प्रकार करना चाहिए।

यदि मूल या उनके समान नक्षत्रों में पुत्र-पुत्री हो तो उस नक्षत्र के प्रथम द्वितीय पाद में १०१ माला का और तृतीय चतुर्थ पाद में ५१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माला का घर में कोई व्यक्ति या अन्य किसी के द्वारा जप करालें। यह विधि जन्म से २८वें दिन जब वही नक्षत्र आता है, तब की जाती है। इस दिन चौसठ ऋद्धि मण्डल विधान पूजा कर लें। इसके तीन-चार दिन पूर्व से जप कर लें।

जप मन्त्रं :- ओं ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रौं ह्रः असि आ उ सा मूल नक्षत्रोत्पन्न-पुत्र-पुत्रि सम्बन्धी सर्वारिष्ट निवारणे कुरु कुरु स्वाहा।

घर का प्रसूति स्थान ४५ दिन तक अशुद्ध रहता है। ४५वें दिन नवजात शिशु को मन्दिर ले जावें। वहाँ जिनेन्द्र प्रतिमा के सामने शिशु की माता अपने शिशु को नीचे सुला दे और गृहस्थाचार्य या अन्य कोई व्यक्ति नवबार णमोंकार मन्त्र उसके कानों में सुनावें। बालक को उसी समय अष्ट मूलगुण (पाँच उदम्बर और तीन मकार का स्थूल रूप से त्याग) धारण करा कर जैन बनावें। इस त्याग की जिम्मेदारी बालक के विवेकशील होने तक परिवार की रहती है। जिस घर में मद्य, मांस, मधु का भी त्याग न हो वह जैन घर कैसे माना जावे ?

सप्तम नामकर्म-संस्कार

जन्म के १२, १६ या ३२ वें दिन यह संस्कार करें। दस दिन सूचक होने से जिनाभिषेक, पूजा, शास्त्र का स्पर्श नहीं होता। सूतक त्रिलोकसार, मूलाचार आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी बताया गया है। सूतक वाले के घर मुनिराज आहार नहीं लेते।

नाम कर्म के लिए ज्योतिषाचार्य से जन्म पत्रिका (कुंडली) बनवाने पर जिस राशि का नाम आवे, उस राशि का नाम या १००८ जिन सहस्रनाम के अनुकूल कोई शुभ नाम, शुभचन्द्र, ज्ञानचन्द्र, जिनेन्द्र दास आदि रखे जा सकते हैं। कन्या का नाम भी पुराणों में प्रसिद्ध महिलाओं के नाम के अनुकूल रखना चाहिये। अच्छे नाम का अच्छा प्रभाव पड़ता है। सिनेमा आदि में जो नाम आते हैं, वे सच्चे प्यार के नाम नहीं हैं

नाम करण संस्कार :- "सहस्रनामभागी भव, विजयनामाष्टसहस्रभागी भव, परमनामाष्टसहस्रभागी भव।' इन मन्त्रों से आशीर्वाद दिया जावे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनेक नाम लिख कर किसी से एक चिट उठवाने से भी नाम का निर्णय हो सकता है।

नाम घोषित करने के समय, ओंह्री श्रीं क्लीं अर्हं अमुक बालकस्य नामकरणं करोमि। अयं आयुरारोग्यैश्वर्यवान् भवतु भवतु झ्रौं झ्रौं असि आ उसा स्वाहा।' मन्त्र पढ़ा जावे।

अष्टम बहिर्यानसंस्कार

यह संस्कार लोक में प्रसिद्ध सूर्य-दर्शन (सूरज का मुहूर्त्त) के समान है। इसमें जैनेतर जनता सूर्य व कूप पूजा आदि करती है। इस क्रिया को जन्म से लगभग १५ दिन से ४५ दिन के भीतर कर लेते हैं, जब कि २, ३ या ४ वें माह में किये जाने का शास्त्र में उल्लेख है। इसके आशीर्वाद मन्त्रं नीचे लिखे अनुसार हैं :—

"उपनयनिष्क्रांतिभागी भव, वैवाहनिष्क्रांतिभागी भव, मुनीन्द्रनिष्क्रांतिभागी भव, सुरेन्द्रनिष्क्रांतिभागी भव, मन्दराभिषेकनिष्क्रांति भागी भव, यौवराज्यनिष्क्रांतिभागी भव, महाराज्यनिष्क्रांतिभागी भव, परमराज्यनिष्क्रांतिभागी भव, आर्हन्त्यनिष्क्रांतिभागी भव।' बालक को जिनालय में दर्शन कराते समय 'ओं नमोऽर्हते भगवते जिनभास्कराय जिनेन्द्र प्रतिमा दर्शने अस्य बालकस्य दीर्घायुष्यं आत्मदर्शनं च भूयात्" यह मन्त्र पढ़ें।

नवम निषद्या-संस्कार

पाँचवें माह में बालक को बैठाने की क्रिया की जाती है। उस समय पूर्व मुख कर सुखासन से बैठावें। नीचे लिखे आशीर्वाद सूचक खास मन्त्र पढ़ें :—

'दिव्यसिंहासनभागी भव, विजयसिंहासनभागी भव, परमसिंहासन भागी भव।'

दशम अन्नप्राशन-संस्कार

जन्म से ७, ८ या ९ वें माह में अन्न आहार बालक को कराना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहिये। इसके पहले अन्न देने से स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। लीवर आदि के रोग इसी के परिणामस्वरूप होते हैं। इसके खास मन्त्र ये हैं :—

'दिव्यामृताभागी भव, विजयामृतभागी भव, अक्षीणामृतभागी भव।'

ग्यारहवाँ वर्षवर्द्धन (व्युष्टि)-संस्कार

यह क्रिया बालक के एक वर्ष का होने पर करें। इस दिन मन्दिर में पूजा विधान करावें। बालक को मन्दिर भेजें। उसका जन्म दिवस मनावें। बालक को इन मन्त्रों से आशीर्वाद देवें।

"उपनयन जन्मवर्षवर्द्धनभागी भव, वैवाहनिष्ठवर्धनभागी भव, मुनीन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव, सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्धनभागी भव, मन्दराभिषेकवर्ष वर्धनभागी भव, यौवराज्यवर्षवर्धनभागी भव, महाराज्यवर्षवर्धनभागी भव, परमराज्यवर्षवर्धनभागी भव, आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्धन भागी भव।'

बारहवाँ चौल-संस्कार

यह बालक के पाँच वर्ष पूर्ण होने पर होता है। दो तीन वर्ष में भी यह क्रिया की जा सकती है। इसके मुहूर्त सोम, बुध, शुक्रवार, २,३,५,७,१०, ११, १३ तिथि, ज्येष्ठा, मृगशिरा, चित्रा, रेवती, हस्त, स्वाति, पुनर्वसु, पुष्य, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी नक्षत्र हैं। खास आर्शीवाद मन्त्र नीचे लिखे अनुसार है:—

'उपनयन मुँडभागी भव, निर्ग्रंथमुँडभागी भव, निष्क्रांतिमुँडभागी भव, परमनिस्तारककेशभागी भव, सुरेन्द्रकेशभागी भव, परमराज्यकेश भागी भव, आर्हन्त्य-केशभागी भव।' केश निकल जाने के बाद चोटी के स्थान पर केशर से स्वस्तिक बनावें। इसी समय कर्ण-नासिका वेध क्रिया भी करते हैं।

तेरहवाँ लिपिसंख्यान-संस्कार

यह पाँच वर्ष पूर्ण होने पर घर में या पाठशाला में सोम, बुध,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शुक्र, शनिवार, हस्त, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, चित्रा, अनुराधा, २,३,५,६,१०,११,१२ तिथि के मुहूर्त में करें। जिन मन्दिर में या घर पर पूजा के बाद यह क्रिया करें। सर्वप्रथम "ओं और ओं नमः सिद्धेभ्यः" बालक से पट्टी पर लिखावें और इनका उच्चारण करावें। आशीर्वाद के विशेष मन्त्र निम्न प्रकार हैं :—

"शब्दपारगामी भव, अर्थपारगामी भव, शब्दार्थसम्बन्धपारगामी भव।' बालक को लिपि पुस्तक दी जावे।

चौदहवाँ उपनीति-संस्कार

यह यज्ञोपवीत संस्कार रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार, हस्त, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, उत्तरात्रय, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मूल, रेवती, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, आर्द्रा, पूर्वात्रय इन वार व नक्षत्रों में करें। रक्षाबन्धन के दिन भी सामूहिक रूप में यह क्रिया की जाती है। इसके आशीर्वाद मन्त्र इस प्रकार हैं :-

'परमनिस्तारकलिंगभागी भव, परमर्षिलिंगभागी भव, परमेन्द्रलिंग भागी भव, परमराज्यलिंगभागी भव, परमार्हन्त्यलिंगभागी भव, परम निर्वाणलिंगभागी भव।'

यज्ञोपवीत पहनने का मन्त्र

ओं नमः परमशांताय शान्तिकराय पवित्रीकृतार्ह रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हंनमः स्वाहा।

यज्ञोपवीत का उद्देश्य :— अष्ट मूलगुण (स्थूल रूप से पंच पाप का त्याग और मद्य, मांस, मधु का त्याग) अभ्यास रूप में विद्याभ्यास के काल में ग्रहण कर उनके चिन्ह रूप में यज्ञोपवीत धारण करना है।

पन्द्रहवाँ-सोलहवाँ व्रतचर्या व व्रतावतरण-संस्कार

पहले गुरुकुल (ब्रह्मचर्याश्रम) में विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर विद्याभ्यास करते थे। विवाह के पूर्व अध्ययन पूर्ण होने तक सादा भोजन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और सादगीपूर्ण रहन-सहन व्रत चर्या का उद्देश्य है।

अध्ययन पूर्ण होने पर विद्यार्थी अभ्यास रूप में लिये गये पूर्ण नियम और उनका चिन्ह उतारकर गुरु व माता-पिता की आज्ञा से विवाह के लिए तैयार होता है। उक्त व्रतों में अष्ट मूलगुण स्थूल रूप से सदा पालता है क्योंकि वह जैन का चिन्ह है।

सत्रहवाँ विवाह-संस्कार

विवाह मूल, अनुराधा, रेवती, उत्तरात्रय, हस्त, स्वाति, मघा, रोहिणी इन नक्षत्रों और ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मंगसिर, आषाढ में शुभ हैं। विवाह में वर के लिए सूर्यबल और कन्या के लिए गुरुबल तथा दोनों को चन्द्रबल आवश्यक है। वर की राशि से सूर्य ३,६,१०,११वीं राशि में शुभ और १,२,५,९वाँ पूजा से शुभ तथा ४, ८, १२, वीं राशि में अशुभ माना जाता है। गुरु कन्या की राशि से ९,५,११, २,७ राशि में शुभ १०,३,६, १वीं राशि में पूजा से शुभ तथा ४, ८,१२ वीं राशि में अशुभ होता है।

चन्द्र वर और कन्या की राशि से ३,६,७,१०,११वाँ शुभ और १,२,५,९वाँ पूजा से शुभ तथा ४,८,१२वाँ अशुभ होता है। सम्पूर्ण विवाह विधि आगे प्रकाशित की जा रही है। विवाह विधि दिन में मुहूर्त निकलवा कर करना चाहिये।

संकल्प

ओमद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादि जिनेन्द्रस्य मतेऽस्मिन् विधीयमाने कर्मणि जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतवर्षे...........प्रांते...........नगरे अस्मिन् स्थले .... मासे............. पक्षे............ तिथौ................ वासरे...................... वीर निर्वाण संवत्सरे................ कार्यस्य निर्विघ्न समाप्त्यर्थं शान्त्यर्थं सर्व कल्याणार्थं संकल्पं कुर्मः अर्हं नमः स्वाहा।

संकल्प सुपारी, हल्दी-गांठ, जल, सीधे हाथ में लेकर पाटे पर छोड़ें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मंगल कलश

ओमद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादि जिनेन्द्रस्य मतेऽस्मिन् विधीयमाने कर्मणि शुभ मुहूर्ते अद्य शान्त्यर्थं पुण्याहवाचनार्थं शुद्ध प्रासुकजलपूरितं मंगलकलश स्थापनं करोमि क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

नोट :- शान्ति जप में मंगल-कलश, बिना जल का रख जाता है।

इस मंत्र से शरीर पर जल फेकें

ओं ह्रीं अमृते अमृतोद्भवेअमृतवर्षिणि अमृतं स्त्रावय-स्त्रावय सं सं क्लीं क्लीं व्लूं व्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रावय द्रावय ठःठः ह्रीं स्वाहा।

इस मन्त्र से सब ओर सरसों फेकें।

ओं ह्रां णमो अरिहंताणं, ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं, ओं ह्रूँ णमो आइरियाणं, ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं, ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं सर्व रक्ष-रक्ष स्वाहा।

शांतिमंत्र

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आ उसा सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

बृहत् शांतिमंत्र

ओं नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणदोषाय दिव्यतेजोमूर्तये शान्तिकराय सर्वविध्नप्रणाशाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृत क्षुद्रोपद्रवनाशनाय श्री शान्तिनाथाय नमः ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असि आउना सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(सिक्ख संस्कार)

१९८६ के मई महीने में अपने जीवन के अन्तिम वर्ष में भारतीय जनमानस में जब साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ रहा था तो प्रो० उपाध्याय ने संस्कृत विश्वविद्यालय के मुख्य गेट से मैदागिन के जैन मंदिर, नीचीबाग के गुरुद्वारा, गौदौलिया के चर्च, जामिया सल्फिया विश्वविद्यालय से होते हुए गुरुबाग स्थित गुरुद्वारा तक मैत्री यात्रा का आयोजन कर सभी धर्मों की एकता तथा भाईचारे के संदेश का विवरण प्रस्तुत किया था। यहाँ सिक्ख धर्म के प्रति उनके झुकाव तथा संस्कारों के प्रति आस्था के कारण भारतीय धर्मों के इस प्रमुख सम्प्रदाय के संस्कारों का विवरण प्रस्तुत है।

सिक्ख धर्म एवं दर्शन में प्रायः वैदिक परम्परा की बातें ही मानी जाती हैं पर सिक्ख गुरुओं ने भारतीय सन्तों की वाणियों का संग्रह कर के भारतीय संस्कृति की विविधता का संदेश दिया। इसीलिए वह अपनें संस्कार गुरुग्रन्थ-साहब के आधार पर कराते हैं। और इसीलिए हम उसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

सिक्ख धर्म के सभी संस्कार गुरुग्रन्थ साहब के पाठ से प्रारम्भ होता है। और सभी संस्कारों के मौके पर कुछ सबद, सदा संकीर्तन रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। हम उसका एक प्रारूप प्रस्तुत कर रहे हैं—

(१) गर्भाधान संस्कार–

यद्यपि एतदर्थ किसी तिथि मिति का विधान नहीं है फिर भी जब सद्‌गुरुनानक की कृपा से किसी सिक्ख के घर किसी दम्पती को नया बच्चा आने वाला होता है तो शक्ति और श्रद्धा के अनुसार सहजपाठ अथवा कीर्तन कराया जाता है। कड़ा प्रसाद की व्यवस्था की जाती है और कुलदीपक के मंगल की कामना की जाती है। ऐसे मौंके पर निम्नलिखित सबद प्रायः रागियों द्वारा संकीर्तन में गाया जाता है—

सुइ महल्ला पंजवा–

सन्ता के कारज आप खलोया हर कम्म करावन आया राम।

धरत सोहावी ताल सोहावा बिच अमंरत जल छाया राम।

RajGuru Math; Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अमरत जल पूरन साज कराया सगल मनोरथ पूरे।
जय जयकार भया जग अन्दर लाथे सगल विसूरे।
पूरन पुरुष अचुत अविनासी जस वेद पुरानी गाया।
अपना विरद रख्या परमेसर नानक नाम ध्याया।

इस प्रकार सबद कीर्तन के वाद अपने घर में या गुरुद्वारे में कड़ा परसाद देकर यह मंगल कार्य पूरा कर लिया जाता है।

(२) नामकरण –

नम करन संस्कार घर या गुरुद्वारे में ही सम्पन्न किया जाता है। इस वक्त भी गुरु ग्रन्थसाहब का पाठ कराया जाता है। कोई अखण्ड पाठ कराता है, कोई मात्र गुरुद्वारा में मत्था टेकते वक्त लड़के को ध्यान में रखकर यह नाम करण का संस्कार करवाता है। गुरुग्रन्थ साहब के पाठ के अनन्तर संकीर्तन के वक्त गुरुग्रन्थ साहब से नाम करण की विधि व्यवस्थित की जाती है। जब रागीजत्था सबद कीर्तन हेतु गुरुगन्थ साहब का प्रकाश करेगा तो बायें हाथ के पहले सबद के पहले अक्षर के नाम से जो नाम आता है वह रखा जाता है। जैसे यदि सबद-'हुकुम के भई प्रापत' बायें हाथ के सबद के रूप में गुरुग्रन्थ साहब के प्रकाश के वक्त ऊभर आये तो नाम भगत सिंह होगा। यह पाठ कराने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है। इस प्रकार नाम करण संस्कार सम्पन्न होता है।

(३) दस्तारबन्दी संस्कार–

सिक्ख सम्प्रदाय में मुंडन संस्कार नहीं कराते हैं और इसकी जगह पर दस्तारबन्दी या पगड़ी-बाधने का संस्कार होता है। बालक के बड़े होने की अवस्था में केस को सुरिक्षत तथा गन्दा न हीने देने हेतु पगड़ी बाँधने की रस्म अदा की जाती है। यह भी घर पर गुरुग्रन्थ साहब का पाठ करके किया जाता है या गुरुद्वारा में अरदास करके सम्पन्न किया जाता है। कोई लिखित विधान नहीं है।

यज्ञोपवीत तो सिक्खधर्म में नहीं होता है। यद्यपि गुरुनानक देव जी के यज्ञोपवीत की बात कही गयी है पर उन्होंने उसका खण्डन करते हुए निम्नलिखित दोहा पढ़ा, जो विख्यात है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दया कपाह संतोख सूत जत गण्डी सत वट ।

एह जनेऊ जीअ का हई ता पाण्डे घत ।।

(४) विवांह संस्कार–

विवाह संस्कार सिक्खधर्म में माना जाता है पर उसके साथ कई अवान्तर संस्कार भी मनाये जाते हैं जिसको रोका, ठाका, शगुन, मंगनी, कुड़माई आदि कहते हैं।

आगमन :- बारात घर पर आने पर निम्नलिखित सवद प्राय: गाया जाता हैं।

राग सुई महल्ला पहला छन्द घर दो एक ओंकार सत्-

हम घर साजन आये साचै मेल मिलाये ।

सहज मिलाये हरमन भाये पंच मिले सुखपाया ।।

साई वस्तु प्रापत होई जिस सेती मन लाया ।

अनुदिन मेल भया मन मान्या घरमंदर सोहाए ।

पंच सबद धुन अनहद बाजे हम घर साजन आये ।।

आनन्दकारज :- विवाह का दूसरी भाग आनन्दकारज कहा जाता है जहां फिर परम्परा की रश्में पूरी करके लड़के लड़की का गठबन्धन कर सवद कीर्तन के बाद रागी कि— 'पल्ले तैडे मै लागी' का सबद कीर्तन करते हैं और फिर ४ बार गुरुग्रन्थसाहब के साथ फेरे डालकर चार लांवा पढ़ी जाती हैं, वे हैं—

१. सुई मुहल्ला चौथा–

हर पहलड़ी लांव पर विरति करम द्रिड़ाया बलराम जिओ ।

बानी बरमा वेद धरम द्रिड़ो पाय तज़ाया बलराम जिओ ।।

धरम द्रिड़ो हरिनाम ध्यावो सिमरित नाम द्रिड़ाया ।

सतगुरु गुरुपूरा अराधो सब किलविख पाप गवाया ।।

सहज अनन्द मया बड़भागी मन हर हर मीठा लाया ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जन कहे नानक लांव पहली पुरुख मिलाया बलराम जिओ ।।

एक लावां के उच्चारण तक दुल्हा दुलहिन गुरुग्रन्थ साहब का एक फेरा देकर पूरा कर लेते हैं। तब पुनः दूसरा लांवा पढ़ा जाता है।

२. हर दूजड़ी लांव सतगुरु पुरख मिलावा बलराम जियो।
निर्भव मैं मन होए हौमें मैल गवाया बलराम जिओ।
निर्मल भव पाया हर गुन गाया हर वेर वे राम हदूरे।
हर आतम राम पसारया स्वामी सरव रह्या भर पूरे।
अन्तर बाहर हर प्रभु एको मिल हर जन मंगल गाए।
जन नानक दूजी लांव चलाई अनहद सबद बजाए।

इसके बाद दुसरा फेरा भी पूर्ववत् जब तक की रागी पढ़ते है पूर्ण किया जाता है।

३. हर तीजड़ी लांव मन चावो भया वैरागिया बलराम जिओ।
सन्त जना हरमेल हर पाया बड़भागिया बलराम जिओ।
निर्मल हर पाया हरि गुन गाया मुख बोलि हरि बानी।
सन्तजना बड़भागी पाया हरि कथियै अकथ कहाणी।
हिरदै हरि हरि हर धुनि उपजी जपियै मस्तकि भागु जिओ।
जन नानकु बोले तीजी लांवो हरि उपजै मन वैरागु जिओ।

इस लांवे के बाद तीसरा फेरा दुल्हा दुलहिन पूरा करते हैं।

४. हरि चौथड़ी लांव मन सहज भया हरि पाया बलराम जिओ।
गुरुमुखि मिलिया सुभायू हरि मन तन मीठालाया बलराम जिओ।
हरि मीठा लाया मेरे प्रभु भाया अनदिनु हरि लिव लाई।
मनि चिन्द्या फलु पाया स्वामी हरिनामु बजी बधाई।
हरि प्रभि ठाकुर काजु रचाया धन हिरदय नाम विगासी।
जन नानक बोले चौथी लावैं हरि पाया प्रभु अविनासी ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस प्रकार इन चारों लावों के साथ चार फेरे देकर दुल्हा दुलहिन विवाह संस्कार में बँध जाते हैं जिन्हें आनन्दकारज कहा जाता है। यह कृत्य आजकल कुछ सुधार के साथ संपन्न हो रहे हैं जहाँ सद्गुरु लोग उपदेश देते हैं। सिक्खधर्म की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि वह समयानुसार धर्म की धर्मान्धिता से मुक्ति दिलाया है। इसके उपरान्त रागीजन आखिरी सबद पढ़ते हैं "विवाह हो गया मेरे वावला" तब विवाह सम्पन्न मान लिया जाता है।

(५) अमृत पान संस्कार–

हर सिक्ख के लिए केश, कंघा, कड़ा, कृपाण तथा कच्छा (कछहरा) रखना जरुरी है। हर सिक्ख के नाम के आगे सिंह सबद लिखा जाता है। नवे गुरुतेग वहादुर जी के बध को चादनी चौक पर लाखों सिक्खों ने देखा। पर किसी की हिम्मत न हुई कि वह आगे आये। परन्तु तभी प्राकृतिक अन्धड़ तथा वर्षा से सारा अन्धावृत्त हो गया और इसका फायदा उठाकर एक सिक्ख ने गुरुजी का पवित्र सिर लेकर उनके सपूत श्री गाविन्दराय जी को आनन्दपुर साहिब में दिया। एक और सिक्ख-कपास में गाड़ी में छुपाकर गुरुजी का धड़ अपने घर ला दाह संस्कार किया। आनन्दपुर सहिब में इस बात पर विचार हुआ और सिक्ख पहचाने न जाय एतदर्थ सबको पूर्णकेश धारी रहने का आदेश हुआ।

१६९९ में आनन्दपुर साहब में बहुत बड़ा दीवान लगा जिसमें भारतवर्ष के सभी भागों से सिक्ख आये। मंच पर गुरु गोविन्दराय नंगी कृपाण लेकर आये और ललकारे कि इस नंगी कृपाण को एक सिक्ख के शिर के भेट की जरूरत है। इस गुरु वाक्य को सुनकर सिक्खों में खुसुर फुसुर होने लगी तभी एक सिक्ख ने कृपाण के प्यास हेतु शिर हाजिर किया। गुरु जी ने तेज आवाज के साथ उस सिक्ख को भीतर लिया और पुनः रक्त से सराबोर नंगी कृपाण लाकर दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पांचवे सिक्खों को बलिदान की। प्रार्थना की क्रमशः तभी दयाराम, धर्मदास, साहबराम, मौकमराम तथा हिम्मतराय आये और गुरुजी को अपने को समर्पित किया। गुरुजी ने उन बलिकृत शहीदों को पुनः एक साथ मंच पर उपस्थित किया और उनको पंच प्यारों की संज्ञा से अभिहित किया। उनके हाथों में लोहे के बाटे में लोहे के खण्डे के साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बतासा घोलकर पाँच वाणियों का पाठ चलता रहा जिससे अब वे दयासिंह, साहबासिंह, धर्मसिंह, मौकमसिंह तथा हिम्मत सिंह कहलाये। इसके वाद इन पंच प्यारों से श्री गुर गोविन्द राय ने स्वयं को अमृत छकाकर सिंह बनाने की अपील की। तब उन्होंने (पंचप्यारों ने) कहीं-हमने शीश देकर अमृत पान किया है आप बिना बलिदान के इस दात (अमृत) को नहीं पा सकते। उस समय गुरुगोविन्दराय ने कहा— जिस जुल्म के विरुद्ध पाचवें तथा नवें गुरु ने बलिदान दिया है उसी शृंखला में मेरे चार बेटे तथा पूज्या माँ भी बलिदान देगें। अतः इस के साथ मुझको अमृत की दात दी जाय। तब पंच प्यारों ने गुरु गोविन्द सिंह नामकर दिया। तब से गुरुजी ने कहा— 'रैहित प्यारे मुझ को सिक्ख प्यारा नाम' अर्थात् मुझको सिक्ख से भी प्यारा उसकी रहनी है या 'रैहनी रहे सो सिक्ख मेरा ओ साहब मै उसका चेरा' अर्थात् जो सिक्ख रहनी से रहेगा, वह मेरा मालिक तथा मैं उसका नौकार हूँ। यह सर्वोत्तम संस्कार है पर सभी सिक्ख यह नहीं करते हैं।

(६) दाहसंस्कार (श्राद्ध)–

वैदिक धर्म की भांति जीवन में पुत्रोत्पत्ति के बाद धर्म पूर्वक रहते हुए जीवन व्यतीत करना तथा नित्य गुरुद्वारा जाना गुरुग्रन्थ का पाठ करना आवश्यक माना गया है। इस धर्म का अन्तिम संस्कार 'दाह संस्कार' मृत शरीर को जलाकर सम्पन्न किया जाता है। और ३,४ दिन रात में कीर्तन, अर्चा एवं सुखमनी साहब का पाठ चलता रहता है। अन्त में जहां व्यक्ति का प्राण छूटता है या अस्पताल के वाद लाश को रखकर जलाने हेतु घर से श्मशान पर ले जाते हैं वहां गुरुगन्थ साहब का अखण्ड पाठकर अरदास किया जाता है तथा पंगत खिलाया जाता है।

सम्पन्न व्यक्ति गुरुद्वारे में जाकर समापन का पाठ तथा अरदास कराकर पुनः मंगल कराता है। शोकसभा में आत्मा की शान्ति के लिए गुरुसाहब से अरदास की जाती है। स्मरणीय सिक्खधर्म ने सभी वैदिक संस्कारों का सरल स्वरूप स्वीकार किया है तथा सब कार्यों में गुरुग्रन्थ साहब का पाठ आवश्यक बतलाया है। इस प्रकार सिक्ख धर्म के प्रमुख संस्कारों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

वैदिक-बौद्ध-जैन तथा सिक्ख संस्कारों को इस पुस्तक में देना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैसे ही आवश्यक है जैसे भारतीय संस्कृति के बोध के लिए वैदिक-संस्कृत-पालि तथा प्राकृत भाषा आवश्यक है। यह सामान्य लोगों को समझ में नहीं आता पर भारतीय संस्कृति का बोध करने के लिए उतारु लोगों के लिए आवश्यक है। कभी-कभी बड़े-बड़े कर्मकाण्डी पंडित अपने सम्प्रदाय के बाहर के लोगों के संस्कारित भाव को नहीं जान पाते हैं और जो जानना चाहते है उनको साहित्य उपलब्ध नहीं होता। इस दृष्टि से मैंने इन विभिन्न संस्कारों का संग्रह कर दिया है। पाठक कृपया इनको पढ़े तथा अपनी टिप्पणियां प्रस्तुत करें।

मेरा एक दृष्टिकोण स्पष्ट तथा अनुभूत है कि भारतीय वैदिक शास्त्रों में बौद्ध, जैन मन्तव्य बहुतायत मात्रा में है। इससे वैदिक विद्वान इसको पढ़ते हैं तथा तार्किक प्रौढ़ता को देखकर अवैदिकों के प्रति भी सहानुभूति शील होते हैं तथा अपने मन से सम्प्रदायान्तर के प्रति कटुता का भाव समाप्त कर देते हैं। इसी प्रकार यदि सेमेटिक धर्म के कर्मकाण्ड एवं संस्कार दिये जायं तो संम्भवतः सामाजिक कटुता खत्म हो सकती है।

राधेश्यामधर द्विवेदी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रो० उपाध्याय–देशभक्त और क्रांतिकारी

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में सन् १९४५ में श्री उपाध्याय जी से मेरा परिचय हुआ था। उस समय वे राजकीय संस्कृत कालेज (बनारस) के छात्र थे और मैं काशी विद्यापीठ का विद्यार्थी था। उसी काल में मैं समाजवाद की ओर आकृष्ट हुआ और लगभग वही समय था जब जगन्नाथ जी गांधी जी के प्रभाव से हटकर समाजवादी विचारधारा की ओर खिंचे। जब १९४७ में भारत स्वतंत्र हो गया तो मेरे और उनके बीच समाजवाद समान रूचि का क्षेत्र था। अब वाराणसी में १९५६ में मानववादी संघ की स्थापना हुई तो जगन्नाथजी उसमें आगे-आगे थे। श्री नरसिंह नारायण मानववादी संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष थे। वाराणसी शाखा के प्रथम महामंत्री श्री उपाध्यायजी थे और अध्यक्ष प्रो० एन०के० देवराज। बाद में १९५८ में मैंने महामंत्री का भार संभाला। उसी समय संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और पुराने राजकीय संस्कृत कालिज का उसमें विलय हो गया। नये विश्वविद्यालय में उसी समय बौद्धदर्शन और पालि विभागों का निर्माण हो रहा था। यद्यपि श्री भिक्षु जगदीश काश्यप प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष थे, किंतु वास्तविक गतिविधियों का संचालन प्रवक्ता पद पर रहते हुए भी उपाध्यायजी करते थे। बौद्ध और जैन दर्शनों और पंथों को नास्तिक मानकर परंपरागत पंडित वर्ग उस समय विरोध की भावना से ग्रसित था। उस उपेक्षा और बिलगाव ने बौद्ध विभाग को अलगथलग कर रखा था। उपाध्यायजी की संघर्षशीलता और कार्यकौशल तथा तत्कालीन कुलपति श्री आदित्यनाथ झा का समर्थन न होता तो बौद्धदर्शन विभाग को दृढ़ करना संस्कृत विश्वविद्यालय की तत्कालीन परिस्थितियों में कदाचित् संभव न था। बौद्ध धर्म और दर्शन से मेरा कोई खास परिचय न था। किंतु मैं इन्हें जातिविरोधी और छुआछूत-विरोधी मानकर उनको प्रगतिशील धारा के अधिक निकट मानता था, और उपाध्यायजी के कार्यक्रमों में सहज सहायक था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाराणसी में उस समय राष्ट्रीय ख्याति के दो समाजवादी विचारक थे। एक थे प्रो० संपूर्णानन्द और दूसरे आचार्य नरेंद्रदेव। दोनों ही काशी विद्यापीठ के अध्यापक थे। संपूर्णानन्दजी समाजवादी दल से अलग हो चुके थे। यद्यपि मैं संपूर्णानन्द का प्रत्यक्ष विद्यार्थी था, किन्तु मेरी राजनीतिक निष्ठा का केन्द्र समाजवाद के साथ समाजवादी दल था। फलतः नरेंन्द्रदेवजी की ओर अधिक झुकाव था। इस झुकाव का एक कारण और भी था। संपूर्णानन्दजी वेदांत और हिन्दू धर्म के साथ समाजवाद का मेल बैठाते थे। मेरी यह धारणा थी कि हिन्दू धर्म और उसके द्वारा पुष्ट सामाजिक ढांचा बुनियादी रूप से पश्चात्‌गामी तथा विषमतापोषक है, अतः समाजवाद जैसे क्रांतिकारी विचार से उसका मेल बैठाना व्यर्थ है। वस्तुतः कार्ल मार्क्स के प्रभाव ने मुझे धर्मविरोधी बना दिया था। धर्म को मैं शंका की दृष्टि से देखता था। भारतीय धर्मों का हृदय वैराग्य और निवृत्तिमार्ग में है। वे व्यक्ति को संसार से विमुख करते हैं और फलतः समाज और उसकी राजनीति एवं आर्थिक समस्याओं की ओर से भी विरत करते हैं। दूसरे, इन धर्मों में अंधविश्वासों की भरमार है। इस दृष्टि से वे बुद्धिविरोधी भी हैं। अद्वैत वेदांत की प्राणिजगत की आत्मिक एकता का सामाजिक जीवन की एकता-समता से कोई सम्बंध न था। व्यवहार में वह विषमता का पोषक था। आचार्य नरेंद्रदेव समाजवाद के प्रतिपादन में धर्म का मेल बैठाने की कोशिश नहीं करते थे और समाजवाद को सांस्कृतिक क्रांति की संज्ञा देते थे। वे अपने को मार्क्सवादी कहते थे। पर जगन्नाथजी का उनसे निकट का सम्बंध एक दूसरे प्रसंग से भी था। वह प्रसंग था बौद्धदर्शन। मेरे ख्याल में उपाध्यायजी की बौद्ध दर्शन में रूचि शायद आचार्य नरेंद्रदेव के कारण हुई थी। उपाध्यायजी वेदांत के विद्यार्थी थे। वे आध्यात्मिक समता को जीवन की समता में फलित करने के लिए अनेक वर्षों से आतुर थे। विशेषकर अछूतों की अमानवीय दशा को मानवीय गरिमा में बदलने के लिए वे वेदांत का उपयोग करने के अपने प्रयास की विफलता से निराश हो चुके थे, और किसी नये रास्ते की तलाश में थे। अपने अनुभव के आधार पर उन्हें महात्मा गांधी का तरीका अपर्याप्त दिखायी दिया। उधर से निराश होकर वे पहले आचार्य नरेन्द्रदेव की ओर अभिमुख हुए क्योकि वे समाजवाद और फिर बौद्धदर्शन के मूर्धन्य विद्वान थे, और 'बौद्ध धर्म-दर्शन' तथा 'वसुबंधुकृत अभिधर्मकोश का अनुवाद' नामक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी दो पुस्तकों की पाण्डुलिपियां तैयार करने में लगे थे। जगन्नाथ जी और श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी इस काम में उनकी सहायता करने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले, विशेषकर विद्यार्थियों के मंच पर, उपाध्यायजी और श्री व्रजवल्लभ द्विवेदी से अक्सर भेंट होती थी। यों, उस समय यह माना जाता था कि संस्कृत के विद्यार्थियों की स्वतंत्रता के आंदोलन में रूचि नहीं है, और यह लोग इसके अपवाद हैं।

सन् १९५०-५१ में जगन्नाथ जी राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में वेदांत के अध्यापक पद पर नियुक्त हुए थे। उस समय बौद्ध धर्म और दर्शन की पढ़ाई की व्यवस्था वहां नहीं थी। किन्तु डा० मंगलदेव शास्त्री १९४८ में जब उसके प्रधान आचार्य बने तो पंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा तदर्थ तैयार किये गये पाठ्यक्रम के आधार पर बौद्धदर्शन में परीक्षा का प्रावधान कर दिया गया। उपाध्यायजी यह परीक्षा पास कर बौद्धदर्शन के भी आचार्य हो गये थे। जब सन् १९५८ में पालि और बौद्धदर्शन के प्रथम अध्यापक नियुक्त हुए। पद से नहीं अपने उत्साह एवं कर्मठता के बल पर उपाध्यायजी इस विभाग के मुख्य निर्माता थे। कालक्रम में उपाध्यायजी के नेतृत्व में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म और दर्शन की परंपरागत शिक्षा का भारत में एक मुख्य केंद्र बन गया, जिसमें लंका, बर्मा, स्याम, जापान आदि के विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण करने लगे। पर विशेषकर हिमालय-स्थित भारत के उत्तरी सीमांतों में बौद्ध विद्यापीठों की स्थापना में उन्होंने जो महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है वह एक राष्ट्रीय महत्व का काम है। भारत के इतिहास में एक समय यह आया जब बौद्ध धर्म का दीपक बुझ गया था। यदि वह आज फिर जगमगाने लगा है तो उसके पीछे उपाध्यायजी की भी विशिष्ट भूमिका है। सारनाथ में केंद्रीय उच्च तिब्बतीय शिक्षा संस्थान की योजना, स्थापना और विकास में भी उपाध्यायजी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जो आज एक महत्वपूर्ण विद्याकेंन्द्र है।

जब १९६२ में भारत पर चीन का आक्रमण हुआ तो भारत सरकार की उत्तरी सीमा के दुर्गम क्षेत्रों में बसे बौद्ध धर्म के अनुयायियों की महत्ता का भान हुआ। वे लोग धर्म, भाषा और संस्कृति की दृष्टि से तिब्बत के साथ जुड़े हुए थे। व्यापार में भी वे तिब्बत से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध थे। उत्तरी सीमाओं को सुरक्षित करने की दृष्टि से भारत सरकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के लिए यह आवश्यक हो गया था कि उत्तरी सीमा के बौद्ध धर्मावलम्बियों, को भारत की ओर उन्मुख किया जाय। तिब्बती बौद्धधर्म के सर्वोपरि नेता, दलाईलामा, स्वदेश से निष्क्रमण कर अपने कई हजार अनुयायियों के साथ भारत में निवास कर रहे थे। उनकी उपस्थिति से इस समस्या की अनेक कठिनाइयां कम हो गयीं। जिन लोगों के माध्यम से यह कार्य सम्पन्न हुआ और सीमात की अनेक जातियों में भारतीयता का बोध पैदा हुआ उनमें उपाध्यायजी का प्रमुख और केंद्रीय स्थान है। केवल अपने इसकाम से प्रो० उपाध्याय भारत के सांस्कृतिक इतिहास में अमर हो गये। पर यहां मैं उपाध्यायजी की मूल प्रवृत्ति और प्रेरणा के विषय में कुछ कहना चाहता हूँ।

बौद्धधर्म की दीक्षा लेकर वे बौद्ध हो गये। यही नहीं, उन्होंने बौद्धधर्म को भारत में प्रसारित-प्रचारित करने का काम किया। विशेषकर हजारों हरिजनों को उन्होंने बौद्धधर्म में दीक्षित किया-कराया। हिन्दुओं को उनका यह आचरण पसंद न आया। पर यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी कि यह काम करते हुए भी वे बहुसंख्यक हिन्दू समाज से न विमुख हुए और न विरल हुए। वास्तव में समस्त भारतीय समाज और राष्ट्र की उन्नति उनकी चिंता एवं कर्त्तृत्व के मुख्य प्रेरणास्रोत थे। हरिजनों के दलन और दीनता की समस्या मानवता की समस्या है। पर यह परतंत्र भारत और स्वतंत्र भारत दोनों की यह एक प्रमुख राष्ट्रीय समस्या बनी रही। इस अति मानवीय समस्या का हल तलाश करने में जब वे हिन्दू धर्म से निराश हो गये तो बौद्ध धर्म की ओर मुड़े। पर मेरे विचार से यह मानवीय समस्या उनकी प्रेरणा का एक सबल स्रोत होने के बावजूद उनका चित्त राष्ट्रभक्ति से सिक्त था। मरने के पहले वे पंजाब के विद्रोह को लेकर बहुत व्याकुल थे। कहते थे कि यदि पंजाब टूटा तो भारत टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। लोकतंत्र में और सांप्रदायिक निरपेक्षता में उनकी गहरी निष्ठा थी, और वे मानते थे कि आधुनिक संदर्भ में भारत की एकता और प्रगति के यह सबल साधन हैं। उन्होंने १९८६ में बौद्ध जयंती के अवसर पर शंतियात्रा का आयोजन किया और उसकी समापन सभा गुरुबाग गुरुद्वारे में की। इसके बाद वे अक्टूबर मास में भारत के अनेक विचारकों और धर्मावलंबियों की एक गोष्ठी का आयोजन करना चाहते थे। पर उसके पहले ही वे एकाएक चले गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अध्ययनवृत्त

सन् १९३१-३२ में वे बलिया की संस्कृत पाठशाला में प्रथमा के विद्यार्थी थे। वह स्वतंत्रता के संघर्ष में राष्ट्रीय हलचल का काल था। महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आंदोलन चल रहा था। जगन्नाथजी ग्याहर-बारह वर्ष के रहे होंगे। छात्रावास में थे। उस छोटी अवस्था में ही धरना और जल्से-जुलूसों में उन्होंने भाग लिया। एक अवसर पर तो वे पुलिस की गोली से बाल-बाल बच गये। जब मध्यमा और शास्त्री की शिक्षा के लिए काशी आये तो गांधी जी के आंदोलन और विचारों का रंग और गहरा हो गया। शास्त्री का प्रथम वर्ष पूरा करने के बाद वे राष्ट्रीय आंदोलन में खुलकर भाग लेने लगे। वस्तुतः वेदांत के अध्ययन से उन्हें एक नया प्रकाश और प्रेरणा मिली थी। उन्होंने अनुभव किया कि वेदांत का फलितार्थ मानवमात्र की मुक्ति तथा समता है और गांधी जी का रचनात्मक कार्यक्रम सच्चे अर्थ में वेदांत का सामाजिक तथा व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता है। इस नये प्रकाश की उमंग में पढ़ाई छोड़ वेदांत का संदेश तथा गांधी जी का कार्यक्रम लेकर वे एक वर्ष तक उत्तर प्रदेश के विभिन्न अंचलों में घूमें।

राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेते हुए भी प्रत्यक्ष राजनीति में वे कभी नहीं घुसे। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, अस्पृश्यतानिवारण और हिन्दूमुस्लिम एकता में उनकी विशेष रुचि थी। इस प्रश्न को लेकर उन्होंने विद्यार्थीकाल में राजकीय संस्कृत कालेज और क्वींस कालेज के छात्रावास में जो लड़ाई लड़ी वह उनकी उद्देश्यनिष्ठा के अतिरिक्त उनकी संघर्षशीलता और संगठनशक्ति का अच्छा उदाहरण है।

संस्कृत कालेज में जगन्नाथजी एकमात्र गांधीवादी विद्यार्थी थे। वे ब्राह्मणकुल में पैदा हुए थे। उनके पिताजी उच्च सरकारी पद पर रहने के बाद गाँव पर रहते थे। उन्होंने अपने इस पुत्र को विद्वान पुरोहित बनाने की आकांक्षा से काशी भेजा था। पिता की इच्छा के अनुकूल उन्होंने उत्साह के साथ व्यावहारिक कर्मकाण्ड की शिक्षा ली। पर उनका विद्रोही मन जाति-पांति की छुआछूत को देर तक स्वीकार न कर सका। सन् १९४२ की अगस्त क्रांति के भी उपाध्यायजी वीर सैनिक थे। बलिया के जनविद्रोह में वे आगे-आगे थे। वहां से निकलकर वाराणसी आये और भूमिगत रहकर एक-डेढ़ वर्ष तक आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने दो साथियों के साथ आगरा में स्थापित हो कांग्रेस का 'बिगुल' छापने में लग गये। सत्याग्रह कर जेल जाने का कोई कार्यक्रम अगस्त क्रांति के समय नहीं था। जुझारु उपाध्यायजी सब कठिनाइयां झेलते हुए बाहर रहे।

वे उत्साह के साथ धार्मिक अनुष्ठान भी कराते थे। परन्तु गांधीजी के प्रभाव में आने के बाद और अस्पृश्यतानिवारण के समर्थक बन जाने पर परम्परागत छुआछूत और शुचिता का परंपरागत व्यवहार उनके लिए असंगत हो गया था। बनारस संस्कृत कालेज एवं क्वींस कालेज के संयुक्त छात्रावास में रहते हुए उन्होंने छुआछूत के परंपरागत व्यवहार से अपने को मुक्त कर लिया। अब अछूत को छूने पर उन्हें नहाने की जरूरत नहीं थी, न ही मुसलमान द्वारा पानी या भोजन छू देने से उनमें अशुचिता आती थी। आगे चलकर वे संध्या में किसी मुस्लिम या हरिजन विद्यार्थी के लोटे का उपयोग यदाकदा करने लगे। इसका उद्देश्य शुचि-अशुचि की परंपरागत धारणा पर प्रहार करना था। पर उनके आचरण ने उन्हें ब्राह्मण विद्यार्थियों और अध्यापकों के समाज में निंदा एवं घृणा का पात्र बना दिया। यहां तक कि कुछ लोग उन्हें छूने से भी बचते थे।

छुआछूत के बंधनों का उलंघन जगन्नाथजी ने सामुदायिक रसौड़े (भोजनालय) में भी किया। अंत में उनके व्यवहार ने आंदोलन का रूप ले लिया। संक्षेप में इसकी कथा निम्न प्रकार है।

उस युग में संस्कृत के अधिकांश छात्र शुचिता के विचार से अपना भोजन स्वयं बनाते थे। वे सामुदायिक रसोड़े में भोजन पसंद नहीं करते थे। बनारस का क्वींस कालेज और राजकीय संस्कृत कालेज एक ही परिसर में थे। दोनों के छात्र एक ही छात्रावास में रहते थे। इस छात्रावास में दो भोजनालय थे। एक हिन्दू छात्रों के लिए और दूसरा मुस्लिम छात्रों के लिए। हिन्दू रसौड़े से हरिज़न छात्रों को भी भोजन मिलता था। पर छुआछूत के व्यवहार के कारण उन्हें रसोई घर से दूर रखा जाता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए अंत में शिक्षा विभाग ने एक तीसरा भोजनालय खोलने की अनुमति दे दी। यह रसोड़ा हरिजन छात्रों के लिए था। जगन्नाथ जी ने सिद्धान्त के आधार पर इसका विरोध किया। पर उनका विरोध मान्य नहीं हुआ। अब जगन्नाथजी के सामने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने अस्पृश्यताविरोधी सिद्धान्त की रक्षा करने का प्रश्न था। वे हिन्दू भोजनालय छोड़कर हरिजन भोजनालय के सदस्य बन गये। कभी-कभी वे मुस्लिम भोजनालय में भी भोजन करने लगे। इस प्रकार उन्होंने अपना विद्रोही रूप बड़ी दृढ़ता और साहस के साथ प्रगट किया। विशेषकर तत्कालीन राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के किसी ब्राह्मण छात्र के लिए ऐसा साहस करना विचित्र और कठिन था। वह रुढ़िवादी पंडितों का गढ़ माना जाता था। पर जगन्नाथजी ने अपनी जान और अपने मान दोनों को दाँव पर लगा दिया। वे संस्कृत के छात्रों और अध्यापकों दोनों की आँखों में खटकने लगे। लेकिन जगन्नाथजी को दोनों भोजनालयों से हटना पड़ा। पहले का अत्यन्त निम्नकोटीय भोजन और दूसरे का सामिष भोजन उन्हें रास नहीं आया। जगन्नाथजी की विद्रोही आत्मा व्याकुल थी।

कुछ समय बाद कृष्णजन्माष्टमी का त्यौहार निकट आ गया। छात्रावास में यह उत्सव की पूरी व्यवस्था उच्चजातीय हिन्दू छात्र करते थे। वे हरिजन छात्रों को प्रतिमा और प्रसाद के निकट नहीं जाने देते थे। इस बार जगन्नाथजी ने एक नया सवाल खड़ा कर दिया। उन्होंने कहा कि भगवान के उत्सव में सब छात्रों को समान रूप से भाग लेने का अधिकार हैं, क्योंकि भगवान् जात-पात का भेद नहीं करते। इस वर्ष जगन्नाथजी के प्रयत्न से छात्रावास का सांस्कृतिक मंत्री भी एक हरिजन छात्र चुना गया था। ऊँची जाति के अधिकांश छात्र उसे भी प्रतिमा और प्रसाद के निकट जाने की अनुमति देने से इनकार कर रहे थे। इस प्रश्न को लेकर छात्रों में दो दल हो गये। तनाव बहुत बढ़ गया। यहां तक कि हाथापाई और मार-पीट की संभावना दिखायी पड़ने लगी।

इस उत्सव में कुछ बाहर के लोग भी भाग लेते थे। छात्रों के विरोधी समूह ने यह तर्क पेश किया कि छात्रों के बीच समानता को हम स्वीकार करते हैं, पर मेहमान के रूप में बाहर से आये लोगों पर बिना उनकी सहमति के हम अपना निर्णय नहीं लाद सकते। उनका कहना था कि ऐसा करना शिष्ट और नैतिक आचरण के विपरीत होगा। उपाध्यायजी ने यह तर्क स्वीकार कर लिया और घोषणा कर दी कि मेहमानों को प्रसाद देने के बाद उसका वितरण हरिजन तथा मुस्लिम छांत्र करेंगे। पर ऊँची जाति के अधिकांश छात्र अंदर-अंदर इसके विरोध की तैयारी करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहे। उन्होंने प्रसाद से हरिजन और मुस्लिम छात्रों को दूर रखने की योजना बना ली थी। लेकिन संयोग से जगन्नाथ जी का दल प्रसाद पर अपना अधिकार करने में सफल हो गया। इस घटना के बाद छात्रावास में तनाव और संघर्ष पैदा हो गया। हरिजन छात्रों का तरह-तरह से बहिष्कार और उत्पीड़न होने लगा। जगन्नाथजी को यह देखकर बहुत दुःख हुआ कि हरिजन छात्र जल्द ही हिम्मत हार गये। उन्होंने चंद दिन के बाद ही ऊँची जाति के छात्रों के सामने समर्पण कर दिया। इस पीड़ा को उन्होंने बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है। वे कहते हैं—

"छात्रावास के जीवन से मुझे जो अनुभव हुआ उससे मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि गांधीजी की हरिजनों के उद्धार की जो आकांक्षा है और समानता का दर्जा दिलाने में उन्हें उँची जाति के लोगों के सहयोग की जो आशा है वह उस समय तक पूरी नहीं हो सकेंगी जबतक हरिजन अपने अधिकारों की लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए आगे नहीं आयेंगे। इस अनुभव ने गांधीजी के सिद्धांत में मेरी आस्था को हिला दिया।"

उपाध्यायजी मानवतावादी थे। वे उदार थे और सच्चे अर्थ में धार्मिक पुरुष थे, सब प्रकार की सांप्रदायिकता और संकीर्णता से ऊपर। वे सांस्कृतिक और सामाजिक क्रांति के एक उग्र पुरोधा थे। पर वे साथ ही समर्पित देशभक्त थे। देश की एकता पर खतरे की छाया उन्हें व्याकुल कर देती थी। पंजाब के आतंकवाद और अलगाववाद से वे बहुत चिंतित थे। इस अलगाववाद के कारणों की खोज के लिए उन्होंने काशी से संस्कृत विश्वविद्यालय के अध्यापकों के एक दल को पंजाब भेजा था। उनकी राष्ट्रभक्ति में सामाजिक क्रांति और नवसंस्कृति का सुयोजित स्वरूप थी।

सत्यप्रकाश मित्तल - वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बच्चों की दृष्टि से प्रो० उपाध्याय

(मुकुलारण्यम् की संचालिका सुश्री भारती जायसवाल ब्रिटेन में रहकर भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट निष्ठावाली हैं। उन्होंने कहा प्रो० उपाध्याय एक उदार तथा सदा सहयोग करने वाले व्यक्ति थे। वह बच्चों के कार्य हेतु रात के ११ बजे भी निकल पड़ते थे। वह शिक्षा इसी प्रकार का चाहते थे जिसमें मानव का समग्र विकास हो। बच्चों तथा महिलाओं के प्रति उनके दृष्टिबोध से प्रो० उपाध्याय का समग्र समाज का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार सुश्री भारती जी का उनके प्रति दृष्टिकोण प्रस्तुत है। सम्प्रति सुश्री भारती जायसवाल बच्चों का बनारस में एक आदर्श- विद्यालय चला रही हैं— संपादक)

प्रो० उपाध्याय अच्छे कार्यों के लिए सदा तत्पर रहते थे। उनमें जाति, विचारधारा या साम्प्रदायिक दृष्टि कभी उनको सीमित घेरे में नहीं बाँधती थी। इसका कारण उनका भारतीय चिन्तन का सहजबोध था जो सनातन काल से चला आ रहा है। इसमें सहिष्णुता, शान्ति, मानवीय गुणों के विकास के लिए सदा से प्रयोग होते रहे हैं और प्रयोगों के द्वारा यह संस्कृति समकृति रूप अर्थात् समान व्यवहारों से सुन्दर स्वरूप वाली बन गयी है। प्रो० उपाध्याय से मिलने वाले लोगों में यह गुण विकसित हो इसीलिए वह भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ गुणों से अलंकृत रहते थे तथा किसी प्रकार का विरोधाभास न दिखे इसका प्रयत्न करते थे। ताकि कोई भी मानव उनके सामने खड़ा होकर यह न पूछे कि कौन से उपाध्याय पर विश्वास किया जाय। इसीलिए वह सबके सामने एक ही रंग में रंगे रहते थे।

मानवीय गुणों के विकास हेतु विद्या का अध्ययन और अध्यापन होना चाहिए। इसको छोड़कर यदि विद्या ने अन्यथा कर दिया तो वह व्यर्थ है। मानव के मन को संस्कारित और बुद्धि को विवेकशील बनाने का कार्य ही तो शिक्षा का मूल मंत्र है, और ऐसी शिक्षा ही क्रमशः आगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चलकर प्रो० उपाध्याय जैसे व्यक्तित्व का निर्माण करती है। प्रो० उपाध्याय जी भी चाहते थे कि भारतीय शिक्षा संस्कार सभी लोगों को परिष्कृत करने का पथ प्रशस्त करें। एतदर्थ उनके कार्यों का महत्व देखा जा सकता है।

भारती जायसवाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बोधिसत्वका श्रावकयानी व्यक्तित्व कैसा था ?

प्रो० उपाध्याय अपने पढ़ाई पारिवारिक दृष्टि और संस्कारों से बिल्कुल विरले व्यक्तित्व वाले थे। वह कर्मनिष्ठ ब्राह्मण के घर पैदा हुए पर ऐकान्तिक रूप से कर्मनिष्ठ बौद्ध थे। वह परम्परागत ढ़ंग से पारिवारिक विवाह में आबद्ध थे पर व्यक्तिगत रूप से वह परम्परा के अरोपित कृत्यों के विरोधी थे। वह सांस्कृतिक पुरुष थे पर उनकी संस्कृति केवल बौद्ध संस्कृति नहीं थे। प्रत्युत वह समग्र भारतीय संस्कृति के अनुयायी थे। उदार सांस्कृतिक व्यक्तित्व के सन्दर्भ में प्रो० उपाध्याय के बारे में बहुत कुछ कहा गया है पर परम्परानुबद्ध समारोपित वैवाहिक जीवन के बारे में कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। हमने विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया और उस सन्दर्भ में उनके श्वसुराल से सम्बन्धित प्रभुनाथ तिवारी और उनके भाई विश्वम्भर नाथ उपाध्याय से मिलकर प्रो० उपाध्याय के पारिवारिक सम्बन्ध को समझने का प्रयत्न किया किन्तु लोक प्रचलित मान्यताओं के सिवाय और कोई गुह्य अर्थ नहीं प्राप्त हो सका। यद्यपि श्वसुराल पक्ष से यह कहते हुए सुना गया कि पुत्राभाव पत्नी को जीवनभर खलता रहा और यह तथ्य सम्भवतः माता जी के जीवन के अन्तिम समय में सत्य को उजागर करने में समर्थ रहा है। बेमेल विवाह सनातन धर्म का सिद्ध तथ्य है पर यह व्यक्तिगत अध्याशय के मुक्ति का साधन भी है।

जब पति-पत्नी का जीवन दो आत्यन्तिक विरोधों का हो तो उसमें पारम्परिक समाज में पुत्र का न होना कितना कष्ट कर होता है यह पारिवारिक निकटस्थ ही जान सकता है। माना कि लोकहित सम्पादन करना बोधिसत्व वृत्ति है किन्तु क्या परिवारहित लोकहित में नहीं आता और यदि स्व के अज्ञान की निवृत्ति का प्रतिफल ही अर्हत का उद्देश्य है तो क्या कोई बोधिसत्व विना अरर्हत वने बुद्धत्व प्राप्त कर सकता है।

लोकहित का हिम्मायती बोधिसत्व ठाकुरदासी के हित का कितना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साधक बना यह आज की सामाजिक परम्परा और आधुनिकता, सांस्कृतिक अनुदारवाद और उदारवाद, वैयक्तिक स्वार्थ और लोकहित के आधार पर ही समक्षा जा सकता है। माना कि बोधिसत्व की आत्मा नहीं होती पर क्या स्वलक्षणात्मक चित्त-संतति भी अस्तित्ववती नहीं होगी। और यदि होती है तो व्यक्ति के पारम्परिक स्थिति का स्वरूप कैसे दुःख समापन में समर्थ होगा। यह प्रश्न बोधिवृत्ति के अनुयायी के सामने सदा खड़ा रहेगा। यदि बुद्ध की भाति यशोधरा के अस्तित्व की चिन्ता के बिना लोक दुःख के समापन हेतु बोधिसत्त्व का व्रत है तो कम से कम श्रावकयानी व्यक्तित्व के स्वरूप की मुक्ति भी अभीष्ट होनी चाहिए। यह सब जटिल परम्परा, संस्कृति और सर्वजनहित की दृष्टि से गुह्य पारिवारिक आख्यान है। पर इन समस्याओं का समाधान भी निकलना चाहिए। प्रो० उपाध्याय इस सबका समाधान इहलोकमूलक कर्मफल व्यवस्था के आधार पर निकालने का प्रयत्न करते रहें। क्या हम इसको मान करके समाधान स्वीकार कर सकते है ?

श्री विनोद तिवारी
अनुसन्धाता
तुलनात्मक धर्मदर्शन विभाग
सं. सं. वि. वि. वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय की साहित्यिक साधना

बनारसी लाल

काशी विद्यापीठ की छात्र परिषद् की हस्तलिखित पत्रिका में इनका पहला दार्शनिक निबन्ध प्रकाशित हुआ था। इसमें इन्होंने अपना नाम नहीं दिया। राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर प्रति वर्ष समायोजित होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिये "महाभिनिष्क्रमण" नामक एकांकी नाटक की रचना इन्होंने की थी, किन्तु बाद में इन्होंने साहित्य की अपेक्षा दर्शन को वरीयता दी। आगे दी गई निबन्ध सूची में इस प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सन् १९४९ से १९५१ तक इन्होंने राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी की त्रैमासिक शोधपत्रिका "सारस्वती सुषमा" का सम्पादन किया। अपने जीवन के अन्तिम दस-बारह वर्षों में ये मृतप्राय संस्कृत साप्ताहिक पत्र 'गाण्डीवम्' को जीवन दान देकर उसका निरन्तर सम्पादन और प्रकाशन करते रहे हैं। इस अवधि में इनके अथक परिश्रम से इस पत्र के अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित हुए। आचार्य नरेन्द्रदेव के ग्रन्थ बौद्ध धर्म-दर्शन, गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ तथा सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ के संस्कृत खण्ड के सम्पादन में इनका पूर्ण सहयोग रहा है। इनका अन्तिम महनीय कार्य है "कालचक्रतन्त्र" की सम्पूर्ण "विमलप्रभा टीका" का उद्धार। इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड का प्रकाशनोद्घाटन परम पावन दलाई लामा जी के पवित्र करकमलों द्वारा हो चुका है और आशा की जा सकती है कि शेष ग्रन्थ भी शीघ्र प्रकाशित हो सकेगा। प्रस्तुत पत्रिका "धी:" के इनके द्वारा सम्पादित दो अंक बौद्ध विद्या के क्षेत्र में अपना क्या स्थान बनाते हैं, इसका मूल्यांकन होना अभी बाकी है।

हम यहाँ उनके संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में लिखे गये प्रकाशित एवं अप्रकाशित अब तक परिज्ञात निबन्धों की सूची दे रहे हैं। एक अथवा दो खण्डों में इन सभी निबन्धों को प्रकाशित करने की योजना है। दर्शन, धर्म, संस्कृति और समाज के क्षेत्र में उनके दिये गये अवदान की सही झलक उसी से मिल सकेगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशित निबन्ध

(१) संस्कृत

१. क्षणभङ्गवाद:
२. गान्धिन: प्रयोगदर्शनम्
३. बौद्धशाङ्करयोरद्वयवाद:
४. भारतीयसंस्कृति:
५. लोकसंस्कृतिविकासाय दर्शनभूमि:
६. शून्यनि:स्वभावनिरालम्बशब्दार्थविचार:
७. ज्ञानस्य निराकारत्वेऽद्वैतवादिबाह्यार्थसत्त्ववादिनोर्विशेष:
८. दर्शनपरिषदो विवरणम्
९. दर्शनपरिषदो विवरणम्
१०. प्राचीनन्यायेषु व्याप्तिविस्तार:
११. बाह्यसद्वस्तुवादिदर्शनेषु सत्यद्वयविमर्श:
१२. भारतीयदर्शनेषु निर्विकल्पतज्ज्ञेययो: स्वरूपविकास:
१३. मानाधीना मेयसिद्धिर्मेयाधीना मानसिद्धिर्वा
१४. विज्ञाननादे मनोनिरूपणम्
१५. दर्शनपरिषदो लक्ष्यं स्वरूपं च
१६. कालरहस्यम्
१७. गांधीवाद:
१८. भारतीयदर्शनेषु बौद्धानां प्रकर्ष:
१९. बौद्ध-प्रमाणमीमांसा
२०. ब्रह्माद्वैतविज्ञानवादयो: साम्यवैषम्ये
२१. बौद्धवैष्णवयोर्भक्तिसाम्यम्
२२. बौद्धदर्शने किञ्चित्
२३. सम्पादकीयम्
२४. सम्पादकीयम्
२५. सम्पादकीयम्
२६. सम्पादकीयम्
२७. सम्पादकीयम्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२८. मोक्ष
२९. भूमिका
३०. भूमिका

(२) हिन्दी

१. भारतीय संस्कृति का विकास
२. भारतीय संस्कृति का स्रोत : हिमालय
३. भारतीय संस्कृति में बौद्धधारा
४. कविराज जी का जीवन दर्शन
५. भारतीय दर्शन में मानव दृष्टि का विकास
६. बौद्ध दृष्टि में अस्तित्व की अवधारणा और उसका सामाजिक सन्दर्भ
७. दुःख की समस्या और परिवर्तनवादी बौद्ध दर्शन
८. अहिंसा : अध्ययन की एक दिशा
९. भारतीय चिन्तन परम्परा में नये जीवन दर्शन की अपेक्षा
१०. बौद्ध दृष्टि में व्यक्ति, लोक तथा सम्बन्ध
११. सामाजिक समता का प्रश्न : प्राचीन एवं नवीन
१२. बौद्ध दृष्टि में व्यक्तित्व का विकास
१३. समाजपरिवर्तन और भगवान् बुद्ध का परिवर्तनवाद
१४. श्रद्धा का केन्द्र और परिवर्तनवाद
१५. संस्कृत शिक्षा का वर्तमान और भविष्य
    १—आज, १ अगस्त १९७३
    २—आज, २२ अगस्त १९७३
    ३—आज, २७ अगस्त १९७३
१६. समाज परिवर्तन के कुछ बुनियादी प्रश्न
१७. जाति तोड़ो की दिशा : बुद्ध और गांधी
१८. खसमानामटीका (सम्पादित लघु पुस्तक)
१९. महायान साधना का विकास
२०. बौद्धदर्शन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२१. बहुजनकल्याण और महात्मा बुद्ध की देन
२२. लद्दाख की सांस्कृतिक समस्या : व्यापक सन्दर्भ में
२३. बौद्धदर्शन और मार्क्सवाद : विरोध एवं सम्भावनाएँ—
२४. बौद्ध न्याय की भूमिका
२५. बौद्ध धर्म में परिवर्तनवाद
२६. सिद्ध एवं अपभ्रंश साहित्य का सर्वेक्षण
२७. भगवान् बुद्ध और आज का भारत
२८. नागार्जुन की नीतिमीमांसा
२९. प्रतीत्यसमुत्पाद : अस्तित्व, सम्बन्ध एवं परिवर्तन
३०. कविराज जी के प्रति श्रद्धा : अखण्ड भारतीय संस्कृति का जागरण
३१. भारतीय ज्ञानमीमांसा पर बौद्ध विज्ञानवाद का प्रभाव
३२. महात्मा गांधी का प्रयोग दर्शन
३३. भूमिका—जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन
३४. आचार्य जी और बौद्धदर्शन
३५. बौद्ध तन्त्रदर्शन और प्रत्यभिज्ञा दर्शन
३६. जाति तोड़ो : एक दिशा समस्या से समाधान की ओर।
३७. भूमिका—आप्तमीमांसा, सम्पा० उदयभान जैन।
३८. सीमान्त बौद्धों की वर्तमान समस्या, विद्या भारती, अकं २, किन्नौर, हि०प्र०।
३९. क्या बौद्ध-वैष्णव मतों में भक्तिभाव की समता है ?—चिन्तामणि, वर्ष ८, अंक।
४०. पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश की बौद्ध संस्कृति : समस्या और समाधान—सीमान्त प्रदेशीय बौद्ध सम्मेलन स्मारिका
४१. कृष्णमूर्ति : एक शब्द चित्र—

(3) ENGLISH

1. Modern Relevance of Buddhist Philosophy
   Bharat Manisha, Quarterly
   Vol. II, No.I, P. 13-18, April 1976.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

2. Irrelavanc of God : A Buddhist View. Bodhi-Rasmi, P.99-101, Published on Ist International Conference on Buddhism and National Cultures, New Delhi, 10-15 Oct. 1984.
3. The Cultural Controversies between the Buddhist and Vedas in the Literature of Kalidas. Published in Analytical Studies in Buddhist Philosophy, Ed. by G.C. Nayak, Utkal University, Bhuvaneswar, 1984.

अप्रकाशित निबन्ध

१. जे० कृष्णमूर्ति।
२. आचार्य नागार्जुन का दर्शनः निषेध और निर्माण।
३. ईश्वर की अप्रसंगिकता बौद्ध दृष्टि में।
४. आधुनिक सन्दर्भ में बौद्ध परिवर्तनवाद।
५. काशी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।
६. काशी की धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि।
७. अस्पृश्यता।
८. भारतीय प्रश्नों के महान् उत्तर।
९. जातिवाद पर भगवान् बुद्ध का चतुर्दिक् प्रहार।
१०. बौद्ध दृष्टि में जीवन और उसका उद्देश्य।
११. भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में श्रमण-परम्परा का अवदान।
१२. व्यक्ति और समाज : बौद्ध चिन्तन।
१३. सांस्कृतिक संकट के बीच प्राकृतों की समस्या।
१४. बुद्धिगत मिथ्यात्व का निषेध।
१५. समाज परिवर्तन और बौद्ध पुनर्जागरण।
१६. धर्म की अवधारणा (बैंकाक लेक्चर)
१७. बुद्ध की अनिवार्यता : आधुनिक भारतीय सन्दर्भ में।
१८. बौद्ध दर्शन का अन्य भारतीय दर्शनों पर प्रभाव।
१९. कविराजजी के जीवन-दर्शन की दिशा : मानव स्वातन्त्र्य और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संस्कृति।

२०. उपेक्षित जातियों की समस्या की व्यापकता।
२१. बौद्ध संस्कृति बनाम ब्राह्मणवाद।
२२. प्रेम।
२३. 'दोषों के निषेध में ही निर्माण की अनन्त सम्भावनाएँ।
२४. स्वभाववाद।
२५. मूल्य परिवर्तन के लिए अस्तित्व की नवीन व्याख्या आवश्यक।
२६. बौद्ध योग का लक्ष्य: आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण।
२७. बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त : सामाजिक जीवनदृष्टि।
२८. संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति की विश्वयात्रा।
२९. भारतीय संस्कृति को बौद्धों की देन।
३०. वर्तमान सन्दर्भ में बौद्धदर्शन के जीवन्त तत्त्व।
३१. बौद्ध न्याय का विकास एवं योगदान।
३२. जातिवाद : समस्या से समाधान की ओर।
३३. सीमान्त प्रदेश का सांस्कृतिक पुनर्जागरण।
३४. बौद्ध आन्दोलन की क्रान्तिकारी सम्भावनायें।
३५. डॉ० अम्बेडकर के बौद्ध आन्दोलन की भावी दिशा।
३६. अनस्तित्वाधारित अस्तित्व : उत्क्रान्ति एवं सम्बन्ध।
३७. बौद्ध दर्शन की नवीन सम्भावनाएँ।
३८. अपोहवाद।
३९. बौद्ध और वेदान्त दृष्टि में जीवन और दर्शन में अविद्या।
४०. विद्रोह का दर्शन।
४१. बौद्ध एवं वैदिकों का सांस्कृतिक वाद-प्रतिवाद : कालिदास के काव्यों में।
४२. वेदान्त और बौद्धदर्शन की समन्वित जीवनदृष्टि की बाधाएँ।
४३. विक्रमशिला विश्वविद्यालय
४४. देश की समस्याएँ।
४५. सांस्कृतिक क्रांति : दिशा और कार्यक्रम।
४६. धर्म-परिवर्तन के पीछे।
४७. ब्राह्मण नहीं, ब्राह्मणवाद का विरोध।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

४८. परिवर्तन की समस्याः ब्राह्मणवाद बनाम बौद्धवाद।
४९. ब्राह्मण वर्ग भी उपेक्षित।
५०. बौद्ध दृष्टि में अहिंसा।
५१. बोधिचित्त का विकास और आधुनिक सन्दर्भ।
५२. भगवान् बुद्ध, बौद्ध धर्म और उनके दर्शन की रूपरेखा (८भाग में नेपाल के भाषण)
५३. संस्कृत शिक्षा का विस्तार क्षेत्र।
५४. संस्कृत शिक्षा की विशेषता क्या है ?
५५. नेपाल में बौद्ध शिक्षा का प्रारूप।
५६. गांधी जी का नीतिधर्म।
५७. भारतीय दर्शनों के नये वर्गीकरण की दिशा।
५८. पुण्यश्लोक आचार्य नरेन्द्रदेव।
५९. आचार्य दीपंकर की दृष्टि में वज्रयान।
६०. भगवान् बुद्ध की अनिवार्यता : आधुनिक भारतीय सन्दर्भ में (कोलम्बो रेडियो प्रसारण)
६१. बौद्ध धर्म की धर्मनिरपेक्षता।
६२. दुःख की समस्या और परिवर्तनवादी बौद्ध दर्शन।
६३. वज्रयान : धर्म, साधना और जीवन दर्शन।
६४. शान्ति और अहिंसा : बौद्ध दृष्टि में।
६५. भारतीय बौद्ध समाज का अन्तर्ग्रन्थन : विविधता और समानता।
६६. कालचक्रतन्त्रस्य वैशिष्ट्यम्।
६७. Some Aspects of Kalacakra Tantra.
६८. Vajrayana : System Perceptivity and Practice.
६९. God and Tradition.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.